वे चाहते सब
झोली भर लें,
निज आत्मा का
दर्शन कर लें।
जितना समय पूर्णिमा-दर्शन हेतु आने-जाने में लगता है, उतना समय अपनी ही जगह पर मौन, अल्पाहार, जप, ध्यान करनेवाले को कई गुना लाभ होता है। अतः जून के पूर्णिमा-दर्शन का आग्रह न रखकर अपने-अपने स्थान पर मानसिक दर्शन और मौन-ध्यान का लाभ उठायें। ऐसे ही जुलाई की पूर्णिमा पर भी कर सकते हैं।
- पूज्य बापूजी
संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
ऋषि प्रसाद
अंक : १५० जून २००५ मूल्य : रु. ६/-
हिन्दी

महान भगवद्भक्त

'श्रीमद्भागवत महापुराण' से

(गतांक से आगे)

प्रह्लादजी के सहपाठियों ने पूछा : प्रह्लादजी ! इन दोनों गुरुपुत्रों को छोड़कर और किसी गुरु को तो न तुम जानते हो और न हम। ये ही हम सब बालकों के शासक हैं। तुम एक तो अभी छोटी उम्र के हो और दूसरा जन्म से ही राजभवन में अपनी माँ के पास रहे हो । तुम्हारा महात्मा नारदजी से मिलना कुछ असंगत-सा जान पड़ता है । प्रियवर ! यदि इस विषय में विश्वास दिलानेवाली कोई बात हो तो तुम उसे कहकर हमारी शंका मिटा दो।

नारदजी कहते हैं : युधिष्ठिर ! जब दैत्यबालकों ने इस प्रकार प्रश्न किया, तब भगवान के परम प्रेमी भक्त प्रह्लादजी को मेरी बात का स्मरण हो आया। कुछ मुस्कराते हुए उन्होंने उनसे कहा।

प्रह्लादजी ने कहा : जब हमारे पिताजी तपस्या करने के लिए मंदराचल पर्वत पर चले गये, तब इन्द्रादि देवताओं ने दानवों से युद्ध करने का बहुत बड़ा उद्योग किया। वे इस प्रकार कहने लगे कि 'जैसे चींटियाँ साँप को चाट जाती हैं, वैसे ही लोगों को सतानेवाले पापी हिरण्यकशिपु को उसका पाप ही खा गया।' जब दैत्य सेनापतियों को देवताओं की भारी तैयारी का पता चला तो उनका साहस जाता रहा। वे उनका सामना नहीं कर सके। मार खाकर स्त्री, पुत्र, मित्र, गुरुजन, भवन, पशु और साज-सामान की कुछ भी चिंता न कर वे सब-के-सब अपने प्राण बचाने के लिए शीघ्र ही इधर-उधर भाग गये । अपनी जीत चाहनेवाले देवताओं ने राजमहल में लूट-खसोट मचा दी। यहाँ तक कि इन्द्र ने राजरानी-मेरी माता कयाधू को भी बंदी बना लिया। मेरी माँ भय से घबराकर कुररी (टिटिहरी) पक्षी की भाँति रो रही थी और इन्द्र उसे बलात् लिये जा रहे थे। दैववश देवर्षि नारद उधर आ निकले और उन्होंने मार्ग में मेरी माँ को देख लिया । उन्होंने कहा : ''देवराज ! यह निरपराध है। इसे ले जाना उचित नहीं। महाभाग ! इस सती-साध्वी परनारी का तिरस्कार मत करो। इसे छोड़ दो, तुरंत छोड़ दो !''

इन्द्र ने कहा : इसके पेट में देवद्रोही हिरण्यकशिपु का अत्यंत प्रभावशाली वीर्य है। प्रसवपर्यंत यह मेरे पास रहे, बालक हो जाने पर उसे मारकर मैं इसे छोड़ दूँगा।

नारदजी ने कहा : इसके गर्भ में भगवान का परम प्रेमी भक्त और सेवक, अत्यंत बली और निष्पाप महात्मा है। तुममें उसको मारने की शक्ति नहीं है।

देवर्षि नारद की यह बात सुनकर उसका सम्मान करते हुए इन्द्र ने मेरी माता को छोड़ दिया और इसके गर्भ में भगवद्भक्त है, इस भाव से उन्होंने फिर मेरी माता की प्रदक्षिणा

आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध, एक, क्षेत्रज्ञ, आश्रय, निर्विकार, स्वयं-प्रकाश, सबका कारण, व्यापक, असंग तथा आवरणरहित है - ये बारह आत्मा के उत्कृष्ट लक्षण हैं।

"देवर्षि नारदजी बड़े दयालु और सर्वसमर्थ हैं। उन्होंने मेरी माँ को भागवत-धर्म का रहस्य और विशुद्ध ज्ञान - दोनों का उपदेश दिया। उपदेश देते समय उनकी दृष्टि मुझ पर भी थी।"

की तथा अपने लोक में चले गये।

इसके बाद देवर्षि नारद मेरी माता को अपने आश्रम लिवा लाये और उसे समझा-बुझाकर कहा कि "बेटी ! जब तक तुम्हारा पति तपस्या करके नहीं लौटता, तब तक तुम यहीं रहो।"

"जो आज्ञा ।" कहकर वह निर्भयता से देवर्षि नारदजी के आश्रम पर ही रहने लगी और तब तक रही, जब तक मेरे पिता घोर तपस्या से लौटकर नहीं आये। मेरी गर्भवती माता मुझ गर्भस्थ शिशु की मंगलकामना से और इच्छित समय पर (अर्थात् मेरे पिता के लौटने के बाद) संतान उत्पन्न करने की कामना से बड़े प्रेम तथा भक्ति के साथ नारदजी की सेवा-शुश्रूषा करती रही।

देवर्षि नारदजी बड़े दयालु और सर्वसमर्थ हैं। उन्होंने मेरी माँ को भागवत-धर्म का रहस्य और विशुद्ध ज्ञान - दोनों का उपदेश दिया। उपदेश देते समय उनकी दृष्टि मुझ पर भी थी। अब बहुत समय बीत जाने और स्त्री होने के कारण मेरी माता को तो उस ज्ञान की स्मृति नहीं रही, परंतु देवर्षि की विशेष कृपा होने के कारण मुझे उसकी विस्मृति नहीं हुई। यदि तुम लोग मेरी इस बात पर श्रद्धा करो तो तुम्हें भी वह ज्ञान हो सकता है क्योंकि श्रद्धा से स्त्री और बालकों की बुद्धि भी मेरे ही समान शुद्ध हो सकती है। जैसे ईश्वरमूर्ति-काल की प्रेरणा से वृक्षों के फल लगते, ठहरते, बढ़ते, पकते, क्षीण होते और नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही जन्म, अस्तित्व की अनुभूति, वृद्धि, परिणाम, क्षय और विनाश - ये छः भाव-विकार शरीर में ही देखे जाते हैं, आत्मा से इनका कोई सम्बंध नहीं है। आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध, एक, क्षेत्रज्ञ, आश्रय, निर्विकार, स्वयं-प्रकाश, सबका कारण, व्यापक, असंग तथा आवरणरहित है - ये बारह आत्मा के उत्कृष्ट लक्षण हैं। इनके द्वारा आत्मतत्त्व को जाननेवाले पुरुष को चाहिए कि शरीर आदि में अज्ञान के कारण जो 'मैं' और 'मेरे' का झूठा भाव हो रहा है, उसे छोड़ दे। जिस प्रकार सुवर्ण की खानों में पत्थर में मिले हुए सुवर्ण को, उसे निकालने की विधि जाननेवाला स्वर्णकार उन विधियों से प्राप्त कर लेता है, वैसे ही अध्यात्मतत्त्व को जाननेवाला पुरुष आत्मप्राप्ति के उपायों द्वारा अपने शरीररूप क्षेत्र में ही ब्रह्मपद का साक्षात्कार कर लेता है।

आचार्यों ने मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार और पंचतन्मात्राएँ - इन आठ तत्त्वों को प्रकृति बतलाया है। उनके तीन गुण हैं - सत्त्व, रज और तम तथा उनके विकार हैं सोलह - दस इन्द्रियाँ, एक मन और पंचमहाभूत। इन सबमें एक पुरुषतत्त्व अनुगत है। इन सबका समुदाय ही देह है। यह दो प्रकार का है - स्थावर और जंगम। इसीमें अंतःकरण, इन्द्रिय आदि अनात्म वस्तुओं का 'यह आत्मा नहीं है।' - इस प्रकार बाध करते हुए आत्मा को ढूँढ़ना चाहिए। आत्मा सबमें अनुगत है परंतु है वह सबसे पृथक्। इस प्रकार शुद्ध बुद्धि से धीरे-धीरे संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय पर विचार करना चाहिए, उतावली नहीं करनी चाहिए। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति- ये तीनों बुद्धि की वृत्तियाँ हैं। इन वृत्तियों का जिसके द्वारा अनुभव होता है, वही सबसे अतीत, सबका साक्षी परमात्मा है। जैसे गंध से उसके आश्रय वायु का ज्ञान होता है, वैसे ही बुद्धि की इन कर्मजन्य एवं बदलनेवाली तीनों अवस्थाओं के द्वारा इनमें साक्षीरूप से

गुरु की प्रेमपूर्वक सेवा, अपने को जो कुछ मिले वह सब प्रेम से भगवान को समर्पित कर देना, भगवत्प्रेमी महात्माओं का सत्संग, भगवान की आराधना, उनकी कथा-वार्ता में श्रद्धा, उनके गुण और लीलाओं का कीर्तन, उनके चरणकमलों का ध्यान और उनके मंदिर-मूर्ति आदि का दर्शन-पूजन आदि साधनों से भगवान में स्वाभाविक प्रेम हो जाता है।

अनुगत आत्मा को जाने। गुणों और कर्मों के कारण होनेवाला जन्म-मृत्यु का यह चक्र आत्मा को शरीर और प्रकृति से पृथक् न करने के कारण ही है। यह अज्ञानमूलक एवं मिथ्या है। फिर भी स्वप्न के समान जीव को इसकी प्रतीति हो रही है।

इसलिए तुम लोगों को सबसे पहले इन गुणों के अनुसार होनेवाले कर्मों का बीज ही नष्ट कर देना चाहिए। इससे बुद्धि-वृत्तियों का प्रवाह निवृत्त हो जाता है। इसीको दूसरे शब्दों में योग या परमात्मा से मिलन कहते हैं। यों तो इन त्रिगुणात्मक कर्मों की जड़ उखाड़ फेंकने के लिए अथवा बुद्धि-वृत्तियों का प्रवाह बंद कर देने के लिए सहस्रों साधन हैं; परंतु जिस उपाय से और जैसे सर्वशक्तिमान भगवान में स्वाभाविक निष्काम प्रेम हो जाय, वही उपाय सर्वश्रेष्ठ है। यह बात स्वयं भगवान ने कही है। गुरु की प्रेमपूर्वक सेवा, अपने को जो कुछ मिले वह सब प्रेम से भगवान को समर्पित कर देना, भगवत्प्रेमी महात्माओं का सत्संग, भगवान की आराधना, उनकी कथा-वार्ता में श्रद्धा, उनके गुण और लीलाओं का कीर्तन, उनके चरणकमलों का ध्यान और उनके मंदिर-मूर्ति आदि का दर्शन-पूजन आदि साधनों से भगवान में स्वाभाविक प्रेम हो जाता है। 'सर्वशक्तिमान भगवान श्रीहरि समस्त प्राणियों में विराजमान हैं' - ऐसी भावना से यथाशक्ति सभी प्राणियों की इच्छा पूर्ण करे और हृदय से उनका सम्मान करे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर - इन छः शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके जो लोग इस प्रकार भगवान की साधन-भक्ति का अनुष्ठान करते हैं, उन्हें उस भक्ति के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में अनन्य प्रेम की प्राप्ति हो जाती है।

जब भगवान के लीला शरीरों से किये हुए अद्भुत पराक्रम, उनके अनुपम गुण और चरित्रों को श्रवण करके अत्यंत आनंद के उद्रेक से मनुष्य का रोम-रोम खिल उठता है, आँसुओं के मारे कंठ गद्गद हो जाता है और वह संकोच छोड़कर जोर-जोर से गाने-चिल्लाने और नाचने लगता है; जिस समय वह ग्रहग्रस्त पागल की तरह कभी हँसता है, कभी करुण-क्रंदन करने लगता है, कभी ध्यान करता है तो कभी भगवद्भाव से लोगों की वंदना करने लगता है; जब वह भगवान में ही तन्मय हो जाता है, बार-बार लंबी साँस खींचता है और संकोच छोड़कर 'हरे ! जगत्पते !! नारायण !!!' कहकर पुकारने लगता है, तब भक्तियोग के महान प्रभाव से उसके सारे बंधन कट जाते हैं और भगवद्भाव की ही भावना करते-करते उसका हृदय भी तदाकार - भगवन्मय हो जाता है। उस समय उसके जन्म-मृत्यु के बीजों का खजाना ही जल जाता है और वह पुरुष श्रीभगवान को प्राप्त कर लेता है।

(क्रमशः)

पहुँचना है उस मंजिल पर

पहुँचना है उस मंजिल पर, जिसके आगे कोई राह नहीं।
जहाँ चिंता, चाहत नहीं कोई, मन होता कभी गुमराह नहीं ॥
पाना है निश्चल आत्मपद, निज परम तत्त्व की थाह नहीं।
जहाँ हर्ष, शोक, विषाद न कोई, सुख, वैभव, धन की चाह नहीं ॥
अनुभव करना है असीम आनंद, सिर्फ जीवन का निर्वाह नहीं।
जहाँ दोष, दुर्गुण नहीं कोई, अहम्, गर्व-गुमान की स्याह नहीं ॥
संचित करना है रामनाम-धन, विषय-रस की परवाह नहीं।
जहाँ राग-द्वेष, दुःख-दर्द न कोई, भय, विरह, वेदना की आह नहीं ॥
पीना है प्रभुप्रेम-रस प्याला, नश्वर मदिरा की चाह नहीं।
फकीरी मस्ती सम नहीं कोई, शाश्वत सुख है अथाह वहीं ॥
मिटकर ही सार्थक जीना है, जहाँ 'साक्षी' भाव अभाव नहीं।
करुणा, परहित सम धर्म न कोई, जहाँ भेद-भरम की निगाह नहीं ॥
जीवन नैया के आप खिवैया, सद्गुरु सम कोई मल्लाह नहीं।
जहाँ हरिभक्ति-शक्ति है मुक्ति, हरि, गुरु एक अल्लाह वही ॥

- पूज्य बापूजी की शिष्या
जानकी ए. चंदनानी, अमदावाद।

मेरे प्यारे राम -

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

'श्रीमद्भागवत' में आता है :

सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे ।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ॥

'सच्चिदानंदस्वरूप भगवान श्रीकृष्ण को हम नमस्कार करते हैं, जो जगत की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के हेतु तथा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक - तीनों प्रकार के तापों का नाश करनेवाले हैं।'

(श्रीमद्भागवत माहात्म्य : १.१)

जो सत्-चित्-आनंदस्वरूप है, जिसके सत् अंश से सृष्टि दिखती है, चेतन अंश से कीड़ी से लेकर ब्रह्माजी तक सब जीवों में चैतन्यता है और आनंद अंश से सभी लोगों को सुख व आनंद की झलक मिलती है, रोम-रोम में बसनेवाला वह राम-रमैया, राम तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है । वही पक्षियों के द्वारा किलोल कर रहा है, फूलों के द्वारा महक रहा है, हवाओं के द्वारा अठखेलियाँ कर रहा है और वृक्षों में अपनी मधुर रसधार भर रहा है।

"यह कैसा कलियुग है मेरे राम ! कि हम यह पहचानते ही नहीं कि तुम किस रूप में, कैसे आते हो और हम लोग तुम्हारा अनादर कर देते हैं। मेरे राम-रमैया !..."

राम-रमैया के रस में सराबोर रहनेवाले कबीरजी एक दिन आत्ममस्ती में मस्त बैठे थे, उनको छूकर आनेवाली हवाएँ वातावरण में सच्चिदानंद परब्रह्म-परमात्मा का रस छिटक रही थीं। रामदास नाम के एक साधु स्वभाव सद्गृहस्थ ने कबीरजी को आत्ममस्ती में डूबे देख सोचा कि 'कबीरजी कोई सिद्धपुरुष हैं।' उन्होंने कबीरजी के चरणों में गद्गद कंठ एवं सच्चे हृदय से प्रार्थना की कि "महाराज ! मेरा सब कुछ ले लो परंतु मुझे राम-रमैया के दर्शन करा दो, मैं उनको जी-भरके देख लूँ, उनको भोजन करा दूँ।"

परोपकाराय सतां विभूतयः ।

'सज्जनों की विभूतियाँ तो होती ही हैं परोपकार के लिए।' प्रेम, करुणा, दया की मूर्ति कबीरजी को उन सज्जन पर दया आ गयी और बोले : "रामदास ! रामजी के दर्शन करने हैं ? अच्छा ! बुलायेंगे राम-रमैया को। कल का दिन तो तैयारियों के लिए ही लग जायेगा, परसों सवेरे से प्रसाद बनवाना शुरू कर देना और राम के दीवानों (भक्तों) को भी बुला लेना।"

रामदासजी ने दूसरे दिन अपनी सारी जमीन-जागीर बेच डाली और शक्कर, गुड़, घी, मैदा, मटर, साग-सब्जी, कपड़ा आदि जो कुछ लाना था वह एवं दक्षिणा आदि की व्यवस्था कर अगली सुबह प्रसाद बनवाना आरंभ करा दिया।

'मेरे रामजी खायेंगे' - इस भाव से एक से बढ़कर एक व्यंजन बन रहे थे; कहीं कड़ाहे में खीर उबल रही थी तो कहीं हलुआ तैयार हो रहा था, कहीं मालपूए बन रहे थे तो कहीं नमकीन एवं चरपरे व्यंजन बन रहे थे।

"महाराज ! चलो जल्दी, कहीं राम-रमैया पधार न जायें, हम देखे बिना रह न जायें।" - इस प्रकार परस्पर चर्चा करते हुए रामदासजी के उस व्यवस्थापूर्ण मंडप में कुछ साधु-संत भी पधारे।

भंडारे की तैयारी पूरी हो गयी थी। दोपहर होने को थी परंतु अभी तक न तो कबीरजी आये थे और न उनके राम-रमैया। स्वादु वृत्तिवाले सोच रहे थे कि 'क्या पता कब यह कबीर का राम आयेगा!'

साधु लोग सिर उठा-उठाकर देख रहे थे कि 'कब आयें कबीरजी और कब रामदासजी को राम-रमैया का दीदार हो और हमें भी मिल जाय राम-रमैया की एक झलक !' इंतजार की वेला बढ़ती गयी।

थोड़ा समय बीता कि भोजन-मंडप में एक भैंसा घुस गया। उसने पहले मालपूए के तपेले में मुँह मारा, फिर चावल के ढेर में कूदा, खीर के तपेले को उड़ेल दिया और

रमैया !

हलवे की भी ऐसी-तैसी कर दी।

हलवाइयों ने उठायी खुरपी और भैंसे को मारने के लिए भागे। भैंसा इधर से उधर, उधर से इधर दौड़ने लगा और हलवाई उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। भंडारे का सारा सामान अस्त-व्यस्त हो गया।

लोग चिढ़ गये। उन्होंने कबीरजी के लिए कुछ-का-कुछ कहा और रामदासजी को पागल, भावुक ठहराया। रामदासजी भी क्रोधित हुए और डंडा लेकर भैंसे की खूब धुलाई कर डाली। भैंसे की आँखों से आँसू बहने लगे। इतने में कबीरजी वहाँ आ पहुँचे। उन्हें आते देख भैंसा उनकी ओर भागा और कबीरजी उसके गले लग गये। ''प्रभु... प्रभु... प्रभु... !'' कहते हुए कबीरजी भैंसे को सहलाने लगे। उन दोनों की आँखों से झर-झर प्रेमाश्रु बह रहे थे। यह दृश्य देखकर रामदासजी स्तब्ध-से रह गये। साधु-संत भी भौचक्के रह गये।

कबीरजी कहने लगे : ''प्रभु ! मेरे राम-रमैया ! इतनी पीड़ा तो तुमको रावण से भिड़ते समय भी नहीं हुई थी। मेरे कृष्ण-कन्हैया ! क्रूर कंस और चाणूर, मुष्टिक के साथ भिड़ते समय भी तुम्हें इतना कष्ट नहीं हुआ था। यह कैसा कलियुग है मेरे राम ! कि हम यह पहचानते ही नहीं कि तुम किस रूप में, कैसे आते हो और हम लोग तुम्हारा अनादर कर देते हैं। मेरे राम-रमैया !...''

कबीरजी की **'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति', 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** की विशुद्ध भावधारा ने रोष के वातावरण को प्रेमाभक्ति के माधुर्यमय वातावरण में बदल दिया। सभीका अंतःकरण द्रवीभूत होने लगा। सभीके चित्त में चितचोर के प्रसाद का संचार होने लगा।

कबीरजी की भावधारा जारी थी : ''दिखनेभर को भैंसे की आकृति है, दिखनेभर को कोई गिरि है, पुरी है परंतु सब वास्तव में है वही राम-रमैया। भैंसे के रूप में वह हो सकता है तो साधु और संसारी के रूप में और कौन है ? मेरे राम-रमैया ! तू ही तू है। जहाँ देखूँ वहाँ तू ही तू। वृक्षों में तू, लताओं में तू, तुझे कोई पहचाने नहीं तो उसकी दृष्टि का दोष है, मेरे राम !

कीड़ी में छोटा होकर भी तू ही बैठा है। हाथी में बड़ा होकर भी तू ही है और महावत बनकर भी तू ही उस पर बैठा है। भिक्षा लेनेवाले में तू है तो देनेवाले में भी तू ही है। मेरे राम-रमैया ! मेरे कृष्ण-कन्हैया ! मेरे प्रभु ! जहाँ देखूँ वहाँ तू ही तू...

नामदेवजी के आगे कुत्ते के रूप में तू पहुँचा और यहाँ
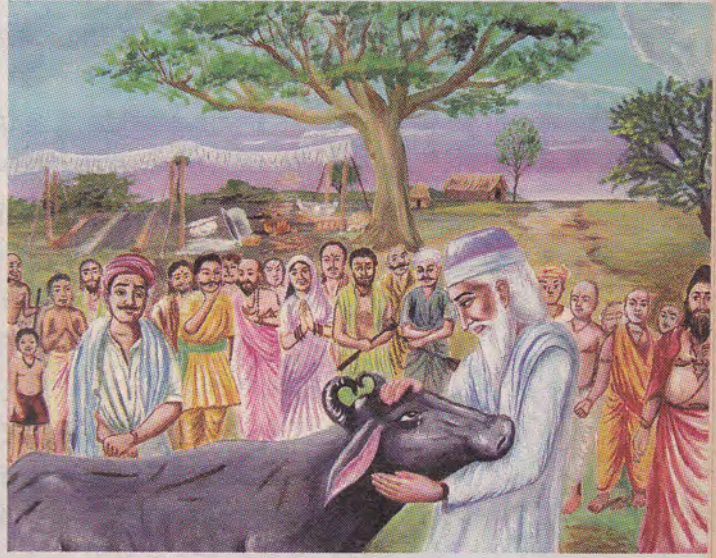
भैंसे के रूप में ! भैंसारूप राम-रमैया ! कृष्ण-कन्हैया ! मेरे प्रभु... प्रभु... ! तेरी लीला अपरंपार है।''

कबीरजी की अद्वैत-दृष्टि से सारा वातावरण राम-रमैया की रसधारा में पावन हो गया। आखिर तो वे संत लोग, भक्त लोग ही थे। रामदाससहित सब राम-रमैया के प्रेम-सागर में डूबने लगे।

कबीरजी कहे जा रहे थे : ''राम-रमैया ! जल में रसरूप में तू है, जल-जंतुओं में भी तू ही है। कहीं मछली, कहीं मगरमच्छ तो कहीं गिरगिट - कहीं कुछ तो कहीं कुछ...''

संत कबीरजी की **'वासुदेवः सर्वमिति'** वाली परिपक्व दृष्टि ने रामदासजी को रोम-रोम में रमनेवाले सच्चिदानंद राम-रमैया का दीदार करा दिया। राम ने उन्हें उस निःसंकल्प अवस्था में विश्राम दिला दिया, जिस अवस्था में पहुँचकर योगी का योग, भक्त की भक्ति और ज्ञानी का आत्मज्ञान सिद्ध हो जाता है।

(यह मधुर प्रसंग **'मेरे प्यारे राम-रमैया !'** ऑडियो कैसेट में है, जो सभी संत श्री आसारामजी आश्रमों व आश्रम की समितियों के सेवा-केन्द्रों पर उपलब्ध है।)

पीड़ पराई जाणे रे...

"अब मैं तेरे हृदय में प्रकट होऊँगा। सेवा के अधिकारी की सेवा मुझ शिव की ही सेवा है।"

एक बालक मणिनगर (अमदावाद) में रहता था। वह शिवजी को जल चढ़ाने के बाद ही जल पीता और खूब निष्ठा से ध्यान-भजन एवं सेवा-पूजा करता था। एक दिन वह नित्य की नाईं शिवजी को जल चढ़ाने जा रहा था। रास्ते में उसे एक व्यक्ति बेहोश पड़ा हुआ मिला। रास्ते चलते लोग बोल रहे थे : 'शराब पी होगी, यह होगा, वह होगा... हमें क्या ?' कोई उसे जूता सुँघा रहा था तो कोई कुछ कर रहा था। उसकी दयनीय स्थिति देखकर उस बालक का हृदय करुणा से पसीज उठा। अपनी पूजा-अर्चना छोड़कर वह उस गरीब की सेवा में लग गया। पुण्य किये हुए हों तो प्रेरणा भी अच्छी मिलती है। शुभ कर्मों से शुभ प्रेरणा मिलती है। अपनी पूजा की सामग्री एक ओर रखकर बालक ने उस व्यक्ति को उठाया। बड़ी मुश्किल से उसकी आँखें खुलीं। वह धीरे-से बोला : ''पानी... पानी...''

बालक ने महादेवजी के लिए लाया हुआ जल उसे पिला दिया। फिर दौड़कर घर गया और अपने हिस्से का दूध लाकर उसे दिया। युवक की जान में जान आयी।

उस युवक ने अपनी व्यथा सुनाते हुए कहा : ''बाबूजी ! मैं बिहार से आया हूँ। मेरे पिता गुजर गये हैं और काका दिन-रात टोकते रहते थे कि 'कुछ कमाओगे नहीं तो खाओगे क्या ?' नौकरी-धंधा मिल नहीं रहा था। भटकते-भटकते अमदावाद रेलवे स्टेशन पर पहुँचा और कुली का काम करने का प्रयत्न किया। अपनी रोजी-रोटी में नया हिस्सेदार मानकर कुलियों ने मुझे खूब मारा। पैदल चलते-चलते मणिनगर स्टेशन की ओर आ रहा था कि तीन दिन की भूख व मार के कारण चक्कर आया और यहाँ गिर गया।''

बालक ने उसे खाना खिलाया, फिर अपना इकट्ठा किया हुआ जेबखर्च का पैसा दिया। उस युवक को जहाँ जाना था वहाँ भेजने की व्यवस्था की। इससे बालक के हृदय में आनंद की वृद्धि हुई। अंदर से आवाज आयी : ''बेटा ! अब मैं तुझे जल्दी मिलूँगा... बहुत जल्दी मिलूँगा।''

बालक ने प्रश्न किया : ''अंदर से कौन बोल रहा है ?''

उत्तर आया : ''जिस शिव की तू पूजा करता है वह तेरा आत्मशिव। अब मैं तेरे हृदय में प्रकट होऊँगा। सेवा के अधिकारी की सेवा मुझ शिव की ही सेवा है।''

उस दिन बालक के अंतर्यामी ने उसे अनोखी प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया। कुछ वर्षों के बाद वह तो घर छोड़कर निकल पड़ा उस अंतर्यामी ईश्वर का साक्षात्कार करने के लिए। केदारनाथ, वृंदावन होते हुए वह नैनीताल के अरण्य में पहुँचा।

केदारनाथ के दर्शन पाये, लक्षाधिपति आशिष पाये।

इस आशीर्वाद को वापस कर ईश्वरप्राप्ति के लिए फिर पूजा की। उसके पास जो कुछ रुपये-पैसे थे, उनसे उसने वृंदावन में साधु-संतों एवं गरीबों के लिए भंडारा कर दिया और थोड़े-से पैसे लेकर नैनीताल के अरण्य में पहुँचा। लाखों हृदयों को हरिरस से सींचनेवाले लोकलाड़ले परम पूज्य सद्गुरु स्वामी श्री लीलाशाहजी बापू की राह देखते हुए उसने वहाँ चालीस दिन बिताये। गुरुवर लीलाशाहजी बापू को अब पूर्ण समर्पित शिष्य मिला... पूर्ण खजाना प्राप्त करने की क्षमतावाला पवित्रात्मा मिला... पूर्ण गुरु को पूर्ण शिष्य मिला...

स्वामी लीलाशाहजी बापू के श्रीचरणों में बहुत लोग आते थे, परंतु सबमें अपने आत्मशिव को ही देखनेवाले, छोटी उम्र में ही जाने-अनजाने आत्मविचार का आश्रय लेनेवाले इस युवक ने उनकी पूर्ण कृपा प्राप्त कर आत्मज्ञान प्राप्त किया। जानते हो वह कौन था ?

पूर्ण गुरु किरपा मिली, पूर्ण गुरु का ज्ञान।... ... ...

आप स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हैं

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्ये आहितः ।

'कर्म मेरे दाहिने हाथ में और विजय मेरे बायें हाथ में स्थित है ।'

मानव-शरीर और मस्तिष्क भगवान की अत्यंत महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। भगवान ने बड़ी कुशलता से इनको गढ़ा है। एक-एक अवयव, नस और नाड़ी को आपस में बड़ी सावधानी से जोड़ा है। भगवान ने मानव में अनंत शक्तियाँ छिपाकर रखी हैं। बस, धैर्यपूर्वक उन्हें जानने और जागृत करने का काम हमारे ऊपर है।

उन्नत विचारों में जीवन को समुन्नत और गौरवशाली बनाने की पूर्ण क्षमता है। उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम जैसे अद्भुत सद्गुण, अद्भुत शक्तियाँ हम अपने सृजनात्मक विचारों से ही उत्पन्न करते हैं और इनका प्रयोग जीवन के क्रियात्मक क्षेत्र में करके सफल होते हैं। इन गुप्त बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों की ओर ध्यान न दें तो हम दीन, दुर्बल और दुःखी बने रहेंगे।

दुर्लभान्यपि कार्याणि सिद्धयन्ति प्रोद्यमेन वै ।
शिलापि तनुतां याति प्रपातेनार्णसो मुहुः ॥

'उत्तम उद्यम के द्वारा दुःसाध्य कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं, जैसे पुनः-पुनः जल गिरने से शिला भी क्षीण हो जाती है।' **(बुद्धचरितम्)**

धरती के भोग वीर पुरुषों के लिए ही बने हैं, अतः उन्हें पाने के लिए पहले मनुष्य की कर्मठता भी तो जागे। पौरुष न जागा तो कुछ हाथ न लगेगा।

वेद भगवान का वचन है :

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्ये आहितः ।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ॥

'कर्म मेरे दाहिने हाथ में और विजय मेरे बायें हाथ में स्थित है। (अर्थात् हे मनुष्य ! अगर तू अपने दाहिने हाथ से पुरुषार्थ करता है तो सफलता तेरे बायें हाथ में निश्चित है।) गौधन, अश्वधन, स्वर्ण आदि सब संपदाओं को तू अपने स्वयं के परिश्रम से प्राप्त कर।' **(अथर्ववेद: ७.५०.८)**

यह एक सुस्पष्ट सत्य है कि दृढ़ निश्चय और सतत उद्योग करते रहनेवाले नरकेसरियों ने ही इस संसार में विलक्षण क्रांतियाँ की हैं। परिस्थितियाँ उन्हें किसी प्रकार भी नहीं दबा सकीं।

जीवन छिपा पुरुषार्थ में है, छिपा इसीमें महा ज्ञान। कर्म हमारी ईश्वर-पूजा, प्राणिमात्र में भगवान ॥

मनि राम नामु आराधिआ

'गुरुग्रंथ साहिब' में गुरु रामदासजी के वचन :

मनि राम नामु आराधिआ गुर सबदि गुरू गुर के।
सभि इछा मनि तनि पूरीआ सभु चूका डरु जम के ॥
मेरे मन गुण गावहु राम नाम हरि के।
गुरि तुठै मनु परबोधिआ हरि पीआ रसु गटके ॥
सतसंगति ऊतम सतिगुर केरी गुन गावै हरि प्रभ के।
हरि किरपा धारि मेलहु सत संगति हम धोवह पग जन के ॥
राम नामु सभु है राम नामा रसु गुरमति रसु रस के।
हरि अंम्रितु हरि जलु पाइआ सभ लाथी तिस तिस के ॥
हमरी जाति पाति गुरु सतिगुरु हम वेचिओ सिरु गुर के।
जन नानक नामु परिओ गुर चेला गुर राखहु लाज जन के ॥

'जिस मनुष्य ने गुरु के शब्द में प्रवृत्त होकर परमात्मा का नाम-स्मरण किया है, उसके मन-तन की तमाम आकांक्षाएँ पूर्ण हो जाती हैं, (उसके भीतर से) यमराज का भी सारा भय दूर हो जाता है। हे मेरे मन ! परमात्मा के नाम के गुण गाया कर। यदि गुरु मनुष्य पर दयालु हो जायें तो उसकी मोहनिद्रा टूट जाती है, वह परमात्मा के नाम का रस लेता है। हे भाई ! गुरु की सत्संगति अत्यंत श्रेष्ठ है, वहीं मनुष्य प्रभु के गुण गाता है।

हे हरि ! कृपा करो, मुझे सत्संगति प्रदान करो। मैं तुम्हारे भक्तों के चरण धोऊँगा। परमात्मा का नाम समस्त सुख देनेवाला है लेकिन गुरु की शिक्षा पर चलकर ही हरि-नाम का रस लिया जा सकता है। जिस मनुष्य ने आत्मिक जीवन देनेवाला नामामृत प्राप्त कर लिया, उसकी सारी प्यास दूर हो गयी। गुरु ही मेरी जाति हैं, गुरु ही मेरी प्रतिष्ठा हैं, मैंने अपना सिर (मान-मर्यादा) गुरु के पास बेच दिया है। दास नानक का कथन है कि हे गुरु ! मेरा नाम 'गुरु का सिक्ख' हो गया है, अब तू अपने इस सेवक की प्रतिष्ठा रख।'

ज्ञान-मंजरी

संत-हृदय ने किया हृदय-परिवर्तन

एक बार एक संत किसी जंगली इलाके से जा रहे थे । उनके पीछे-पीछे एक आदमी उन्हें गालियाँ देते हुए चला आ रहा था । संत उसे बिना कुछ कहे बड़े शांत भाव से अपनी राह चले जा रहे थे । जैसे ही जंगल समाप्त होने को आया और दूर से बस्ती दिखने लगी, संत वहीं ठहर गये और बड़े प्रेम से उस व्यक्ति से बोले : ''भाई ! मैं यहाँ रुक गया हूँ । अब जितना जी चाहे, तू मुझे गालियाँ दे ले।''

''ऐसा क्यों ?'' उस दुष्ट आदमी ने पूछा।

''ऐसा इसलिए भाई ! क्योंकि इस बस्ती के लोग मुझे मानते हैं । उनके सामने तुम मुझे गाली दोगे तो वे तुम्हें इसके लिए जरूर सजा देंगे।''

''तो इससे तुझे क्या ?''

''तुम्हें तंग किया जायेगा तो मेरे चित्त को दुःख होगा । चार कदम कोई संत के पीछे चले तो संत का हृदय उसकी भलाई चाहता है, फिर तू तो इतने कदम चलकर आया है, इसलिए मुझे तुमसे स्नेह हो गया है।'' संत ने प्यार से समझाते हुए कहा।

यह सुनकर वह दुष्ट व्यक्ति संत के चरणों में गिर पड़ा और हाथ जोड़कर क्षमा माँगने लगा।

जानते हैं वे संतपुरुष कौन थे ? वे थे शिवाजी महाराज के गुरुदेव समर्थ रामदास।

साधकों के लिए

प्रत्येक क्षण, प्रत्येक प्रवृत्ति साधनमय हो

साधक के जीवन में ऐसी प्रतीति नहीं रहनी चाहिए कि अमुक समय तो साधन का है और अमुक समय साधन का नहीं है । अमुक क्रिया या प्रवृत्ति तो साधन है और अमुक नहीं । उसका तो प्रत्येक क्षण और प्रत्येक प्रवृत्ति साधनमय होनी चाहिए । जिसकी समझ में सब कुछ भगवान का है, उसका अपना तो मात्र एक भगवान के सिवा और कुछ भी नहीं रहा । फिर उसकी कोई भी प्रवृत्ति भगवान की सेवा से भिन्न हो ही कैसे सकती है ? उसके जीवन का प्रत्येक क्षण भगवान की प्रसन्नता के लिए उन्हींकी दी हुई योग्यता से, उन्हींकी सेवा में लगेगा । इसके सिवा दूसरा साधन हो ही क्या सकता है ?

चित्तशुद्धि के उपाय

(१) बुरे और अनावश्यक संकल्पों का त्याग ही चित्तशुद्धि का पहला उपाय है।

(क) जिस काम से किसीका अहित होता हो, उससे सम्बंधित संकल्पों का नाम बुरे संकल्प है।

(ख) जिसका वर्तमान से सम्बंध न हो, जिस संकल्प को पूरा करने की साधक में योग्यता या शक्ति न हो, यदि शक्ति या योग्यता हो तो भी वर्तमान काल में उसे पूरा करना आवश्यक न हो या सम्भव न हो, ऐसे संकल्पों का नाम है अनावश्यक संकल्प।

इनकी निवृत्ति के बाद साधक के मन में जो आवश्यक और भले संकल्प उठते हैं, उनकी पूर्ति अपने-आप होती है यह प्राकृत नियम है।

(२) आवश्यक और भले संकल्पों की पूर्ति में भी उस पूर्ति के सुख में रस न लेना किंतु ईश्वर की अहैतुकी कृपा का अनुभव करते हुए उनके प्रेम और विश्वास को पुष्ट करते रहना यह चित्तशुद्धि का दूसरा उपाय है।

(क) आवश्यक संकल्प उनको कहते हैं, जिनके अनुसार साधक की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक है और जिनकी पूर्ति का सम्बंध वर्तमान से है, जैसे - भोजनादि शरीर-सम्बंधी क्रिया-विषयक संकल्प एवं अपनी योग्यता के अनुसार अन्यान्य वर्तमान प्रवृत्ति से या निवृत्ति से सम्बंध रखनेवाले संकल्प।

(ख) भले संकल्प उनको कहते हैं, जिनमें किसीका हित एवं प्रसन्नता निहित हो।

(३) जब कभी साधक को ऐसा प्रतीत होता हो कि मेरे आवश्यक और शुभ संकल्पों की भी पूर्ति नहीं हो रही है तो उस समय उसे मन में किसी प्रकार की खिन्नता या निराशा को स्थान नहीं देना चाहिए, अपितु ऐसा समझना चाहिए कि 'प्रभु अब मुझे अपनाने के लिए, मुझे अपना प्रेम प्रदान करने के लिए मेरे मन की बात पूरी न करके अपने मन की बात पूरी कर रहे हैं ।' तथा ऐसे भाव से उन प्रेमास्पद के संकल्प में
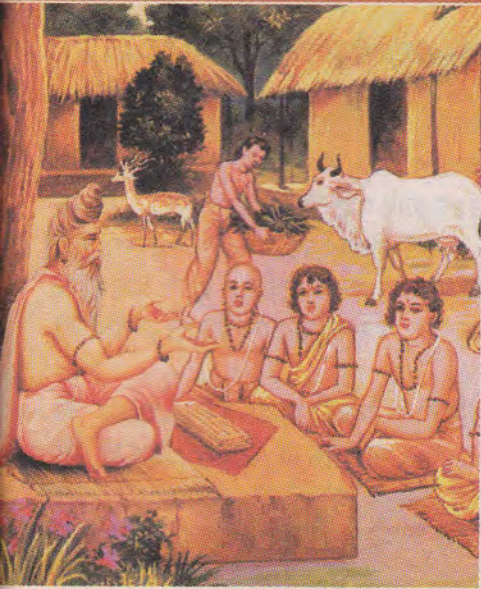
सबसे व्यर्थ क्या है ?

एक शिष्य विद्याध्ययन करने हेतु गुरु-आश्रम में गया। वहाँ ज्ञान प्राप्त करने के बाद उसने गुरु-दक्षिणा देनी चाही। उसके गुरु भी अद्‌भुत थे। उन्होंने गुरु-दक्षिणा में वह चीज माँगी जो बिल्कुल व्यर्थ हो। शिष्य व्यर्थ चीज की खोज में निकल पड़ा। मिट्टी को व्यर्थ समझकर जब उसने उसकी ओर हाथ बढ़ाया तो उसका अंतर्मन बोल उठा : 'तुम इसे व्यर्थ समझ रहे हो ? धरती का सारा वैभव इसके गर्भ से ही प्रकट होता है। ये विविध रूप, रस, गंध क्या इसीसे उत्पन्न नहीं होते ?' इस प्रकार मिट्टी की उपयोगिता समझकर वह किसी और व्यर्थ चीज की खोज में निकल पड़ा।

घूमते-घूमते उसे गंदगी का ढेर दिखा। उसे देखते ही शिष्य के मन में घृणा के भाव आ गये। उसने सोचा कि 'इससे अधिक व्यर्थ चीज और क्या होगी ?' ज्यों ही उसने गंदगी की तरफ हाथ बढ़ाया, त्यों ही उसका अंतर्मन पुनः बोल उठा : 'क्या इससे बढ़िया खाद धरती पर मिलेगी ? सारी फसलें इससे ही प्राण और पोषण पाती हैं। ये अन्न-फल सब इसीके रूप हैं। फिर भी तुम इसे व्यर्थ समझ रहे हो !'

शिष्य सोचने लगा : 'मिट्टी और गंदगी का ढेर भी इतना मूल्यवान है तब भला व्यर्थ क्या हो सकता है ?' तभी उसके अंतर्मन में ज्ञान का प्रकाश हुआ कि 'सृष्टि का हर पदार्थ अपने-आपमें उपयोगी है। व्यर्थ और तुच्छ तो वह है, जो दूसरों को व्यर्थ और तुच्छ समझता है। एक अहंकार के सिवा व्यर्थ और क्या हो सकता है ?'

शिष्य गुरु के पास गया और क्षमा माँगते हुए बोला : ''गुरुदेव ! बहुत खोजने पर भी मुझे धरती पर अहंकार के सिवा व्यर्थ और कुछ नहीं मिला। मैं दक्षिणा में अहंकार देने आया हूँ।'' यह सुनकर गुरु प्रसन्न होकर बोले : ''ठीक समझे वत्स ! अहंकार के विसर्जन से ही विद्या सार्थक और फलवती होती है।''

कैसी दिव्य शिक्षा मिलती थी प्राचीन गुरुकुलों में ! इन वास्तविक विद्यालयों में विद्यार्थी को केवल पुस्तकीय ज्ञान नहीं दिया जाता था, अपितु अनुभवजन्य ज्ञान का भी आदर किया जाता था, उसे शिक्षा का एक अत्यावश्यक अंग माना जाता था। ढेर सारे प्रमाणपत्र इकट्ठे कर उनका बोझ ढोते फिरने की आवश्यकता नहीं थी, अपितु गुरु-सान्निध्य पाते हुए गुरुकृपा पाकर जीवन को उज्ज्वल बनाने व परम लक्ष्य की ओर ले जानेवाली सुंदर समझ विकसित करने की आवश्यकता मानी जाती थी।

गुरुकुलों से निकलनेवाले विद्यार्थी संयम, सादगी, ईमानदारी और मानवीय संवेदना से संपन्न होते थे, उनका व्यक्तिगत खर्च कम रहता था व उनमें आडंबर-दिखावा-शोषणखोरी नहीं होती थी, वे अपने कर्मों से दूसरों के अधिकारों की रक्षा करते थे तथा उनमें परोपकार का पवित्र गुण होता था। आजकल जैसा चल पड़ा है कि 'दूसरों का शोषण करके मौज करो और मरनेवाले शरीर के लिए देश-विदेशों में भोग-सामग्री और धन छुपाये रखो' - ऐसा शिक्षण नहीं था। आज एक ओर प्रज़ा पीड़ित हो रही है और दूसरी ओर ऐसे धनादि का ढेर करनेवाले उन ढेरों की सुरक्षा की चिंता से पीड़ित हो रहे हैं बेचारे !

अपने संकल्पों को मिलाकर उनकी प्रसन्नता से और उनकी प्रेमप्राप्ति की आशाभरी उमंग में आनंदमग्न हो जाना यह अंतःकरण की परम शुद्धि का अंतिम साधन है।

चित्त शुद्ध होने से निर्विकल्प स्थिति और संदेहरहित बोध होता है। उस समय साधक के जीवन में सब प्रकार के दुःखों की निवृत्ति तथा स्वाधीनता और सामर्थ्य इनका अनुभव होता है, परंतु उससे होनेवाले सुख में भी साधक को संतुष्ट नहीं होना चाहिए और उसका उपभोग भी नहीं करना चाहिए, प्रत्युत उदासीन भाव से उसकी उपेक्षा करके भगवान के प्रेम और विश्वास को ही पुष्ट करते रहना चाहिए।

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

दामाजी पंत की भगवद्भक्ति

महाराष्ट्र में चौदहवीं शताब्दी में भयंकर अकाल पड़ा था, जिस कारण वृक्षों की छाल और पत्ते भी सूख गये थे। अन्न के अभाव में हजारों मनुष्य तड़प-तड़पकर मर गये और जो जीवित बचे उनके शरीर में रक्त और मांस नहींवत् बचा था। वे सूखे कंकाल की तरह दिखायी देते थे।

उन दिनों गोवलकोण्डा-बेदर राज्य के मंगलवेढा प्रांत में सूबेदार के पद पर दामाजी पंत नियुक्त थे । वे स्वधर्मनिष्ठ, परोपकारी और भगवान विठ्ठल के परम भक्त थे। अन्न के अभाव में भूख से व्याकुल होकर तड़प-तड़पकर प्राण त्याग रही प्रजा का आर्त स्वर वे सुन नहीं सके। वे विचारने लगे : 'बादशाह ने मुझे मंगलवेढा प्रांत का सूबेदार नियुक्त करके यहाँ का कार्यभार सौंपा है परंतु परमेश्वर तो बादशाहों का भी बादशाह है और यह प्रजा भी उसीकी है। जब सब कुछ परमेश्वर का ही है तो प्रजाजनों को भूख से पीड़ित होकर प्राण क्यों त्यागने पड़ रहे हैं ? मैं अन्न के भंडार को कब तक ताला लगाकर रखूँगा ?' दामाजी पंत ने अकालपीड़ितों के लिए अनाज का शाही गोदाम खोल दिया।

दामाजी विचारने लगे : 'बादशाह ने मुझे यहाँ का कार्यभार सौंपा है परंतु परमेश्वर तो बादशाहों का भी बादशाह है और यह प्रजा भी उसीकी है । जब सब कुछ परमेश्वर का ही है तो प्रजाजनों को भूख से पीड़ित होकर प्राण क्यों त्यागने पड़ रहे हैं ?' उन्होंने अकालपीड़ितों के लिए अनाज का शाही गोदाम खोल दिया ।

सज्जन और उदारात्मा पुरुषों से द्वेष करनेवाले लोग भी होते ही हैं। दामाजी के सहायक ने बादशाह को पत्र लिखकर सूचना भेजी : 'दामाजी पंत ने अपनी कीर्ति के लिए सरकारी अन्न के भंडार को अकालपीड़ितों में लुटा दिया है।'

बादशाह ने पत्र पढ़कर सेनापति को आदेश दिया : ''दामाजी पंत को गिरफ्तार करके मेरे सामने हाजिर करो।''

सेनापति कुछ सैनिकों को साथ लेकर मंगलवेढा प्रांत में दामाजी के घर पहुँचा। उस समय दामाजी भगवान पांडुरंग की पूजा में व्यस्त थे। दामाजी की पत्नी ने सेनापति से कहा : ''आप मेरे होते हुए मेरे पतिदेव की पूजा में विघ्न नहीं डाल सकते। जब तक उनका नित्यकर्म पूरा न हो जाय, तब तक मैं किसीको भी उनके पास नहीं जाने दूँगी।''

उस पतिव्रता नारी की वाणी का ऐसा प्रभाव पड़ा कि सेनापति और उसके सैनिक दामाजी के बाहर आने का इंतजार करने लगे।

दामाजी का नित्यकर्म पूरा होने पर उनकी पत्नी ने उन्हें सेनापति के आने का समाचार दिया। दामाजी समझ गये कि अन्न का शाही भंडार अकालपीड़ितों में लुटा देने के कारण बादशाह ने उन्हें गिरफ्तार करने के लिए ही सेनापति को यहाँ

वर्ष : १५ अंक : १५० जून २००५ ज्येष्ठ-आषाढ़, वि.सं.२०६२ मूल्य : रु. ६-००

ऋषि प्रसाद

अनुक्रम

मेरे प्यारे राम-रमैया !

मारने का अधिकार उसीको है जो जिला सकता हो...

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास कुलकर्णी

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक	: रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. २००/-
(४) आजीवन	: रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक	: रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. ३००/-
(४) आजीवन	: रु. ७५०/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक	: US $ 20
(२) द्विवार्षिक	: US $ 40
(३) पंचवार्षिक	: US $ 80
(४) आजीवन	: US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 80

कार्यालय : **'ऋषि प्रसाद'**, श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

भेजा है।

दामाजी ने अपनी पत्नी से कहा : ''चिंता करने की कोई बात नहीं है। भगवान पांडुरंग हमारे रक्षक हैं। हमने जो कुछ किया है प्रजाजनों के मंगल के लिए ही किया है।''

पत्नी ने कहा : ''नाथ ! भगवान का प्रत्येक विधान दया से पूर्ण व जीव के मंगल के लिए ही होता है। परंतु मुझे दुःख इस बात का है कि अब इस दासी को आपकी सेवा से वंचित रहना पड़ेगा।''

दामाजी पत्नी को समझाकर बाहर आ गये। सेनापति ने बादशाह का आदेश सुनाकर दामाजी के हाथों में हथकड़ियाँ पहना दीं। दामाजी ने सेनापति से कहा : ''बादशाह मुझे मृत्युदंड की सजा भी दे सकते हैं। अतः मुझे एक बार भगवान पांडुरंग के दर्शन करने की इच्छा है। हम पंढरपुर होते हुए उनके पास चलेंगे।''

सेनापति ने उन्हें स्वीकृति दे दी। दामाजी को बंदी बन जाने का दुःख नहीं था। वे तो पांडुरंग के नाम का चिंतन-सुमिरन करते हुए सेनापति के साथ निकल पड़े।

पंढरपुर पहुँचने पर मंदिर में प्रवेश कर दामाजी पांडुरंग की मूर्ति को एकटक देखते हुए प्रार्थना करने लगे : 'हे मेरे पांडुरंग ! सबके दिल में प्रेरणा देनेवाले तुम ही हो। मैंने तो अन्न का शाही भंडार प्रजाजनों की प्राणरक्षा के लिए ही खोला था। हे मेरे विट्ठल ! तुम ही संपूर्ण सृष्टि के कर्ता, भर्ता, भोक्ता, महेश्वर हो। अब आगे की तुम ही जानो।'

दामाजी प्रार्थना करते-करते भगवान के साथ एकाकार हो गये। बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी जब दामाजी वापस न आये तो सेनापति मंदिर में जाकर उन्हें ले आया।

उधर दामाजी को बंदी बनाकर लाने में सेनापति को देरी हो जाने के कारण बादशाह का क्रोध बढ़ गया। इतने में एक साँवला, घुँघराले बालोंवाला युवक हाथ में छोटी-सी लकड़ी व कंधे पर काला कम्बल धारण किये निर्भयतापूर्वक दरबार में आया।

उसे देखकर बादशाह ने पूछा : ''तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ?''

युवक ने कहा : ''मैं दामाजी पंत का नौकर हूँ। मेरा नाम विठू नाईक है।''

विठू का सुंदर, अद्भुत रूप देखकर और हृदय को स्पर्श करती उसकी मधुर वाणी सुनकर बादशाह उसे देखता ही रह गया। फिर उसने पूछा : ''यहाँ क्यों आये हो ?''

''महाराज ! अकालग्रस्त लोगों को भूख से व्याकुल हो प्राण त्यागते देखकर मेरे स्वामी ने उनकी प्राणरक्षा के लिए सरकारी अन्न उनमें बाँट दिया था। अब उन्होंने मुझे उस अन्न का मूल्य चुकाने के लिए यहाँ भेजा है। आप अशर्फियाँ जमा कराके मुझे रसीद दे दीजिये।''

यह सुनकर बादशाह अवाक् रह गया। वह मन-ही-मन पश्चात्ताप करने लगा कि 'मैंने दामाजी जैसे ईमानदार व्यक्ति पर अविश्वास कर बिना सोचे-विचारे ही सेनापति को उन्हें बंदी बनाकर लाने का आदेश दे दिया...'

विठू ने एक थैली बादशाह के सामने रख दी और कहा : ''सरकार ! मुझे देर हो रही है। ये अशर्फियाँ जमा कराकर मुझे शीघ्र ही रसीद दिलवा दीजिये।''

बादशाह ने अपने खजानची को अशर्फियाँ लेकर रसीद देने का आदेश दिया। खजानची उस नन्ही-सी थैली में से अशर्फियाँ निकालता जाता और वह फिर-फिर-से भर जाती। यह देखकर खजानची हैरान रह गया।

आखिर विठू ने अपनी लीला समेट ली। सरकारी अन्न का जितना मूल्य बनता था उससे दुगना मूल्य दे दिया व खजानची से रसीद लेकर वह बादशाह के पास आया। बादशाह ने शाही मोहर लगाकर हस्ताक्षर करके रसीद विठू को दे दी, उसे लेकर वह चला गया। फिर बादशाह ने दीवान से कहा : ''तुम शीघ्र जाओ व दामाजी को आदर-सत्कार के साथ ले आओ।''

इधर प्रातःकाल में दामाजी ने स्नानादि करके गीता-पाठ करने के लिए गीता खोली। उसमें से एक रसीद निकली जिस पर लिखा था : 'दामाजी पंत ने सरकारी अन्न-भंडार के पूरे रुपये चुका दिये हैं।' और नीचे शाही मोहर व बादशाह के हस्ताक्षर थे।

यह देखकर दामाजी को बहुत आश्चर्य हुआ। फिर वे अपने नित्य-नियम में लग गये। जैसे ही वे
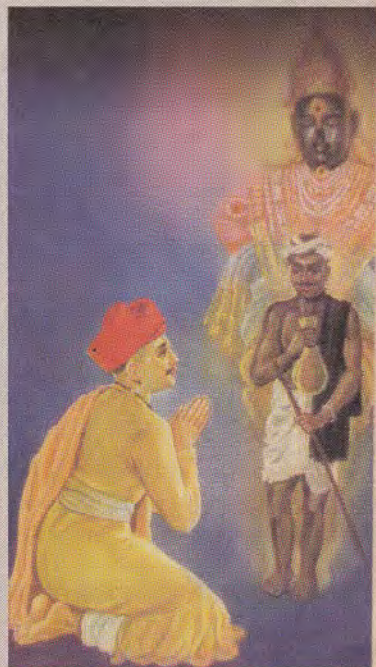
अपना नियम पूरा करके उठे, वैसे ही बादशाह का दीवान वहाँ आ पहुँचा । उसने सेनापति को दामाजी की हथकड़ियाँ खोलने का आदेश दिया और उन्हें बहुत सम्मानपूर्वक लेकर राजमहल की ओर चल पड़ा।

उधर विठू के जाते ही बादशाह की दशा बहुत विचित्र हो गयी। वह सोचने लगा : 'विठू कितना प्यारा लग रहा था ! वह दामाजी का नौकर नहीं हो सकता, वह कोई और ही है।' उसने गुप्तचरों को विठू की खोज करने भेज दिया। बहुत खोजबीन करने पर भी गुप्तचरों को निराश होकर लौटना पड़ा । अब तो बादशाह की व्याकुलता की सीमा न रही। वह अधीर होकर पुकारने लगा : ''विठू कहाँ है ? कहाँ है वह विठू ?''

'विठू-विठू' पुकारते-पुकारते बादशाह अपने महल से बाहर आ गया। उसी समय सेनापति दामाजी को लेकर राजमहल की ओर आ रहा था। दामाजी को सामने से आता देखकर बादशाह उनसे लिपट गया और बड़ी व्याकुलता से कहने लगा : ''दामाजी ! जल्दी बताओ वह प्यारा विठू कहाँ है ? उसको देखे बिना मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं। अब उसके सुंदर मुख को देखे बिना मैं नहीं रह सकता। देर मत करो। मुझे शीघ्र ही विठू का पता बता दो।''

दामाजी यह सुनकर हैरान हो गये । वे बोले : ''हुजूर ! आप किस विठू की बात कर रहे हैं ?''

बादशाह ने कहा : ''दामाजी ! छिपाओ मत, अब मुझे शीघ्र ही विठू का पता बता दो । वही साँवला-सलोना, घुँघराले बालोंवाला हाथ में लकड़ी लिये हुए, तुम्हारे द्वारा भेजी गयी अशर्फियाँ देने यहाँ आया था। वह विठू कहाँ है ? मुझे शीघ्र बता दो।''

दामाजी को समझने में देर नहीं लगी, उनकी आँखों में आँसू आ गये । वे बोले : ''हुजूर ! आप धन्य हैं ! त्रिभुवन के स्वामी ने आपको विठू के रूप में दर्शन दिये। मैं कितना अभागा हूँ जो मेरे लिए सर्वेश्वर को एक दरिद्र का रूप धारण करना पड़ा और मैं उनके दर्शन भी नहीं कर सका।''

दामाजी प्रेम में उन्मत्त होकर ''पांडुरंग ! पांडुरंग ! विट्ठल ! विट्ठल !'' पुकारते-पुकारते मूर्च्छित हो गये। भक्तवत्सल भगवान विट्ठल ने प्रकट होकर दामाजी को उठाया और अपने दिव्य श्रीविग्रह के दर्शन दिये। बादशाह भी भगवान के पुनः दर्शन करके कृतार्थ हो गया।

कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थः ।

वह परमात्मा कितना समर्थ है ! असंभव भी उसके लिए संभव है। अपने भक्त की रक्षा करने के लिए उसे कोई भी रूप धारण करने में कुछ संकोच नहीं होता। जरूरत है तो केवल उस परमात्मा को पाने के लिए सच्ची लगन व निष्ठा की। नास्तिक, मनमुख व्यक्ति क्या जाने भक्त और भगवान के मधुमय सम्बंध का रहस्य ?

ॐ ॐ हरिशरण... ॐ ॐ सच्चिदानंद प्रभु...

भक्तियोग

जिसके साथ हमारा कोई-न-कोई मधुर सम्बंध होता है, उसे देखकर या उसका नाम सुनकर हमारे मन में स्नेह का प्रादुर्भाव हो ही जाता है, परंतु संसार के जितने भी सम्बंध हैं वे सब अस्थिर हैं; आज हैं, कल नहीं रहेंगे । इसलिए जो परमात्मा हम सबका शाश्वत, निःस्वार्थ, दुःख-निवारक, सुख-प्रदायक परम हितैषी एवं वास्तविक सम्बंधी है, उसमें ही परम प्रीति पैदा करनी चाहिए।

'ऋग्वेद' (६.१.५) में आता है :

त्वं त्राता तरणे ।
चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥

'हे तारणहार ! अर्थात् संसार के त्रिविध ताप निवारक प्रभु ! तू ही हमारा रक्षक है, तू ही चैत्य (जानने योग्य) है, तू ही हम मनुष्यों का सदा रहनेवाला सच्चा माता-पिता है।'

हमारे सत्शास्त्रों ने प्यारे भगवान की भक्ति के नौ सुंदर मार्ग बताये हैं :

१. श्रवण २. कीर्तन ३. स्मरण ४. पादसेवन ५. अर्चन ६. वंदन ७. दास्य (हनुमानजी आदि की) ८. सख्य (अर्जुन की) ९. आत्मनिवेदन (मीरा, राजा अम्बरीष आदि द्वारा)।

पराशरनंदन श्री वेदव्यासजी के मतानुसार गुरु-गोविंद की पूजा-उपासना आदि में अनुराग होना भक्ति है । श्री गर्गाचार्यजी के मत में भगवान की कथा आदि में अनुराग होना भक्ति है। शांडिल्य ऋषि के मतानुसार आत्मरति अर्थात् आत्मा में प्रीति होना भक्ति है । 'नारद भक्तिसूत्र' के अनुसार अपने सब कर्मों को भगवान को अर्पण करना और भगवान का तनिक भी विस्मरण होने पर परम व्याकुल हो जाना ही भक्ति है।

हे ईश्वर ! इस धर्मसंकट में तू मेरी लाज रखना ।

भक्ति स्वभाव से ही रसरूप, दिव्य एवं चिन्मयी है। भक्ति ही रस है क्योंकि परमात्मा रसस्वरूप ही है - **रसो वै सः।** भक्तिरस के समान अन्य कोई रस नहीं है, इस रस से रहित मानव पशु-समान है।

'श्रीमद्भागवत' में भगवान श्रीकृष्ण भक्ति की महिमा बताते हुए उद्धवजी से कहते हैं : ''उद्धव ! जैसे धधकती हुई आग लकड़ियों के बड़े ढेर को भी जलाकर खाक कर देती है, वैसे ही मेरी भक्ति भी समस्त पापराशि को पूर्णतया जला डालती है।'' **(श्रीमद्भागवत : ११.१४.१९)**

भगवान श्रीकृष्ण दुर्वासाजी से कहते हैं :

अहं भक्तपराधीनो। **(श्रीमद्भागवत : ९.४.६३)**

भगवान श्रीराम ने कहा है :

भक्त मेरे मुकुटमणि मैं भक्तन को दास। **(रामायण)**

भगवान श्रीरामचंद्रजी के गुरुदेव श्री वसिष्ठ मुनि उन व्यक्तियों को महाभाग्यशाली मानते हैं, जिनको बचपन में ही भगवद्भक्ति मिलती है। वे अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा बहुत ही उन्नत, विलक्षण, सत्यप्रिय, सरल, सदाचारी एवं शीलवान होते हैं।

गाँधीजी को बचपन में उनकी गृहपरिचारिका रंभा ने भय व कष्ट के समय राम-नाम लेने की आदत डाली थी। १३ वर्ष की अवस्था में लधा महाराज से 'रामायण' की कथा सुनकर गाँधीजी भावविह्वल हो जाते थे। 'रामायण' एवं 'श्रीमद्भगवद्गीता' उनके प्रिय सद्ग्रंथ थे। गाँधीजी अपनी आत्मकथा में लिखते हैं : ''विषय-वासना की पशुवृत्तियों पर नियंत्रण स्थापित करने में राम-नाम मेरा सबसे शक्तिशाली साथी रहा है। यह मंत्र मेरे लिए लाठी है और हर विपत्ति से मुझे पार करता है।'' वे कहते हैं : ''जब तुम्हारी वासनाएँ तुम पर सवार हो रही हों, तब प्रभु के आगे घुटने टेककर उन्हें सहायता के लिए पुकारो।''

पराशरनंदन श्री वेदव्यासजी के मतानुसार गुरु-गोविंद की पूजा-उपासना आदि में अनुराग होना भक्ति है।

गाँधीजी जब मुंबई में रहते थे, तब उनके १० वर्षीय बेटे मणिलाल को १०४° बुखार एवं आंत्रज्वर की बीमारी हो गयी थी, सन्निपात (एक रोग जिसमें वात, पित्त और कफ - तीनों बिगड़ जाते हैं) के लक्षण भी दिखायी दे रहे थे। पारसी डॉक्टर ने गाँधीजी से कहा : ''आपके बेटे के प्राण संकट में हैं, अतः आप मणिलाल को शक्ति के लिए मांस एवं अंडा खिलायें तो अच्छा है।''

मणिलाल ने ऐसा अशुद्ध, मन-बुद्धि को मलिन करनेवाला आहार लेने से मना कर दिया।

उसकी तबीयत दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। गाँधीजी गहरी सोच में थे, भीतर से आवाज आयी कि 'डॉक्टर रोगी को प्राणदान नहीं देता, वह भी तो प्रयोग ही करता है। जीवन की डोर तो एक ईश्वर के ही हाथ में है। तू ईश्वर का नाम ले, उस पर श्रद्धा रख, अपना मार्ग मत छोड़।' यह विचार आते ही मणिलाल को उसकी माँ के जिम्मे छोड़कर वे एकांत में समुद्रतट पर चले गये और अंतःकरण की गहराई से प्रार्थना करने लगे कि ''हे ईश्वर ! इस धर्मसंकट में तू मेरी लाज रखना।''

राम-राम का परम पवित्र नाम-जप तो मुख से चल ही रहा था। थोड़ी देर बाद जब वे घर लौटे तो घर में पैर रखते ही मणिलाल ने कहा : ''बापू ! आप आ गये। अब मुझे अच्छा लग रहा है।'' थोड़ी ही देर में मणिलाल की तबीयत में चमत्कारिक सुधार हो गया। अन्य लोगों के लिए तो यह महा आश्चर्य की बात बन गयी किंतु गाँधीजी समझ गये कि मणिलाल का नीरोग होना भगवान श्रीरामचंद्रजी की कृपा का ही प्रताप है। गाँधीजी कहते थे कि ''मेरे सब लड़कों में मणिलाल का शरीर सबसे अधिक सशक्त है।'' यह है भगवद्भक्ति का चमत्कार !

'दम' का पालन करनेवाला मनुष्य सुख से सोता, सुख से जागता तथा सुख से संसार में विचरता है और उसका मन भी प्रसन्न रहता है।

दम की महिमा

युधिष्ठिर ने पूछा : भारत ! मनुष्य क्या उपाय करने से सुखी होता है और क्या करने से वह सिद्ध की भाँति संसार में निर्भय होकर विचरता है ?

भीष्मजी ने कहा : युधिष्ठिर ! वेदार्थ का विचार करनेवाले वृद्ध पुरुष सामान्यतः सभी वर्णों के लिए और विशेषतः ब्राह्मण (ब्रह्मप्राप्ति का इच्छुक साधक) के लिए मन और इन्द्रियों के संयमरूप 'दम' की ही प्रशंसा करते हैं । जिसने दम का पालन नहीं किया है उसे अपने कर्मों में पूर्ण सफलता नहीं मिलती, क्योंकि क्रिया, तप और सत्य - इन सबका आधार 'दम' ही है। दम से तेज की वृद्धि होती है । दम परम पवित्र बताया गया है। दमनशील पुरुष पाप तथा भय से रहित होकर 'महत्' पद को प्राप्त होता है। 'दम' का पालन करनेवाला मनुष्य सुख से सोता, सुख से जागता तथा सुख से संसार में विचरता है और उसका मन भी प्रसन्न रहता है। दम से ही तेज को धारण किया जाता है, दमनशील पुरुष ही रजोगुण पर विजय पाता है तथा वही भीतर के काम-क्रोध आदि शत्रुओं को अपने से पृथक् देख सकता है।

जिनके मन और इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं उन्हें सिंह, व्याघ्र आदि मांसाहारी प्राणियों की तरह समझकर सब प्राणी उनसे डरते रहते हैं । ऐसे उद्दण्ड मनुष्यों की उच्छृंखल प्रवृत्ति को रोकने के लिए ही ब्रह्माजी ने राजा की सृष्टि की है। चारों आश्रमों में दम को ही श्रेष्ठ माना गया है। सब आश्रमों के धर्मों का पालन करने से जो फल मिलता है, दम के पालन से उससे भी अधिक फल मिलता है।

अब मैं उन गुणों का वर्णन करता हूँ जिनकी उत्पत्ति में दम ही कारण है। कृपणता का अभाव, आवेश न आना, संतोष, श्रद्धा, क्रोध का न आना, सरलता, अधिक बकवाद न करना, अभिमान का त्याग करना, गुरुपूजा, किसीके गुणों में दोषदृष्टि न करना, जीवों पर दया करना, किसीकी चुगली न करना तथा लोगों की शिकायत, मिथ्या-भाषण व निंदा-स्तुति से दूर रहना, सबकी भलाई की इच्छा रखना और भविष्य में आनेवाले सुख-दुःख की चिंता न करना - ये सब गुण दम के पालन से प्रकट होते हैं। जितेन्द्रिय पुरुष किसीके साथ वैर नहीं करता, उसका सबके साथ अच्छा बर्ताव होता है। वह निंदा और स्तुति में समान भाव रखनेवाला, सदाचारी, शीलवान, प्रसन्नचित्त, धैर्यवान तथा दोषों का दमन करने में समर्थ होता है। दमनशील पुरुष समस्त प्राणियों को दुर्लभ वस्तुएँ देकर - दूसरों को सुख पहुँचाकर स्वयं प्रसन्न और सुखी होता है। वह सबके हित में लगा रहता है और किसीसे द्वेष नहीं करता। वह बहुत बड़े जलाशय की भाँति गम्भीर होता है और उसके मन में कभी क्षोभ नहीं होता। वह सदा ज्ञानानंद से तृप्त एवं प्रसन्न रहता है। जो समस्त प्राणियों से निर्भय है तथा जिससे संपूर्ण प्राणी निर्भय हो गये हैं, वह दमनशील एवं बुद्धिमान पुरुष सबके नमस्कार के योग्य समझा जाता है। जो बहुत बड़ी सम्पत्ति पाकर हर्ष से फूल नहीं उठता और संकट पड़ने पर जिसे शोक के कारण घबराहट नहीं होती, वह द्विज स्थिरबुद्धिवाला तथा जितेन्द्रिय कहलाता है। जो शास्त्र का ज्ञाता, वैदिक कर्मों का अनुष्ठान करनेवाला, सदाचारी और पवित्र रहता है तथा सर्वदा दम का पालन करता रहता है, उसे महान फल की प्राप्ति होती है।

जिनका अंतःकरण दूषित है वे लोग दोषदृष्टि का अभाव, क्षमा, शांति, संतोष, मीठे वचन बोलना, सत्य-भाषण, दान तथा उद्योगशीलता आदि गुणों को नहीं अपनाते। उनमें तो काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या तथा डींग हाँकना आदि दुर्गुण ही रहते हैं। इसलिए उत्तम व्रत का पालन करनेवाले ब्राह्मण को चाहिए कि वह जितेन्द्रिय होकर काम और क्रोध को वश में करे, ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ घोर तपस्या में संलग्न हो जाय और मृत्युकाल की प्रतीक्षा करता हुआ निर्द्वन्द्व होकर संसार में विचरे।

निगुरा, सूअर और कुत्ता - इन तीनों की एक चाल है । करोड़ों उद्योग करके उन्हें उपदेश करो तो भी वे अपना हठ नहीं छोड़ते ।

संत कबीरजी की वाणी

साकट कहा न कहि चलै, सुनहा कहा न खाय।
जौ कौवा मठ हगि भरै, तो मठ को कहा नशाय ॥

निगुरा क्या नहीं बक डालता ? कुत्ता क्या नहीं खा लेता ? यदि कौआ मंदिर में बीट कर दे तो मंदिर का क्या बिगड़ेगा ?

साकट सूकर कूकरा, तीनों की गति एक।
कोटि जतन परमोधिये, तऊ न छांड़े टेक ॥

निगुरा, सूअर और कुत्ता - इन तीनों की एक चाल है। करोड़ों उद्योग करके उन्हें उपदेश करो तो भी वे अपना हठ नहीं छोड़ते।

टेक न कीजे बावरे, टेक माहि है हानि।
टेक छाड़ि मानिक मिलै, सतगुरु वचन प्रमानि ॥

ऐ पगले ! हठ मत कर, हठ करने में तेरी हानि है। हठ छोड़ने से गुरु-वचन प्रमाण ज्ञान-भक्तिरूपी रत्न मिलते हैं।

साकट संग न बैठिये, करन कुबेर समान।
ताके संग न चालिये, पड़ि हैं नरक निदान ॥

निगुरों के साथ मत बैठो, चाहे वे कर्ण और कुबेर के तुल्य हों। उनके संग में चलने से अंततः नरक ही प्राप्त होगा।

साकट सन का जेवरा, भीजै सो करराय।
दो अच्छर गुरु बाहिरा, बाँधा जमपुर जाय ॥

निगुरा सन की रस्सी है, वह ममता-मोहरूपी जल से भीगकर उत्तरोत्तर कड़ा ही होता जाता है। वह 'गुरु' इन दो अक्षरों से बहरा होने के कारण कुकर्मरूपी यमपुरी में बाँधा हुआ जाता है।

कबीर साकट की सभा, तू मति बैठे जाय।
एक गुवाड़े कदि बड़ै, रोज गदहरा गाय ॥

निगुरों की सभा में तुम जाकर मत बैठो क्योंकि एक गुवाड़ा (गौशाला) में नील गाय, गधा और गाय के रहने से परस्पर अवश्य झगड़ा होगा।

संगत सोई बिगुर्चई, जो है साकट साथ।
कंचन कटोरा छाड़ि के, सनहक लीन्हीं हाथ ॥

जो निगुरे की संगत एवं साथ में रहता है, वह उलझन में पड़ जाता है । इसलिए विरक्त जन स्वर्णपात्र त्यागकर मिट्टी के पात्र से निर्वाह करते हैं, परंतु निगुरे के पात्र नहीं लेते।

हरिजन आवत देखि के, मोहड़ो सूखि गयो।
भाव भक्ति समझयों नहीं, मूरख चूकि गयो ॥

हरिभक्तों (संतों) को आते हुए देखकर जिसका मुख सूख जाता है, वह मूर्ख भाव-भक्ति न समझने से कल्याण-साधन से असावधान हो गया है।

चौसठ दीवा जोय के, चौदह चन्दा माहिं।
तेहि घर किसका चाँदना, जिहि घर सतगुरु नाहिं ॥

यदि कोई चौसठ कलाओं का ज्ञाता एवं चौदह विद्याओं में निपुण है किंतु निगुरा है तो सद्गुरु-ज्ञान के अभाव में उसके जीवन में अँधियारा है।

कबीर लहरि समुद्र की, मोती बिखरे आय।
बगुला परख न जानई, हंसा चुनि चुनि खाय ॥

समुद्र की लहर आने पर मोती किनारे आकर बिखर जाते हैं। बगुला तो उसकी परख जानता नहीं, हंस चुन-चुनकर खाते हैं।

भाव : सत्संग-समुद्र की सार-शब्द की लहर में ज्ञान के मोती बिखर उठते हैं। अविवेकी उसको नहीं जानता और विवेकी उससे लाभ उठाता है।

साकट का मुख बिम्ब है, निकसत बचन भुवंग।
ताकी औषध मौन है, विष नहिं व्यापै अंग ॥

निगुरे का मुख बाँबी है, उससे कुवाक्यरूपी सर्प निकलते हैं । उसकी औषधि मौन धारण करना है, इससे शरीर में विष नहीं व्यापता।

जीव तू मत करना फिकरी...

जीव तू मत करना फिकरी, जीव तू मत करना फिकरी।
भाग लिखी सो हुई रहेगी, भली बुरी सगरी ॥ टेर ॥
तप करके हिरनाकुश आयो, वर पायो जबरी ।
लोह लकड़ से मर्‌यो नहीं, वो मर्‌यो मौत नखरी ॥१॥
सहस्र पुत्र राजा सगर के, तप कीनो अकरी ।
थारी गति ने तू ही जाने, आग मिली ना लकरी ॥२॥
तीन लोक की माता सीता, रावण जाय हरी ।
जब लक्ष्मण ने लंका घेरी, लंका गइ बिखरी ॥३॥
आठ पहर साहेब को रटना, ना करना जिकरी ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो रहना बे-फिकरी ॥४॥

मंत्र-यंत्र पिटारी

(१) सर्प-विष झाड़ने का मंत्र :

खं खः ।

जब कोई सर्पदंश की खबर लेकर आये तो पानी को एक सौ आठ बार उपरोक्त मंत्र से अभिमंत्रित करके उस खबर देनेवाले मनुष्य को देकर कह दें कि वह उस जल को पीड़ित व्यक्ति को पिला दे । इस पानी के पीने से सर्प का जहर उतर जाता है

(२) सर्पों को भगाने का मंत्र :

ॐ प्लः सर्पकुलाय स्वाहा
अशेषकुलसर्पकुलाय स्वाहा ।

इस मंत्र से ७ बार मिट्टी को अभिमंत्रित करके घर में डालें तो सर्प भाग जायेंगे।

(३) 'वीरभद्रोड्डीश तंत्र' में दिया हुआ गाय-भैंस का दूध बढ़ाने का मंत्र :

ॐ ह्रीं करालिनि पुरुषसुखं मुखं ठं ठः ।

तृण आदि को इस मंत्र से १०८ बार अभिमंत्रित कर अर्थात् हाथ में तृण आदि लेकर इस मंत्र का १०८ बार जप करके फिर उसे गाय-भैंस को खिला दें, इससे दूध बढ़ेगा।

(४) दुग्धवर्धक यंत्र :

२८	३५	२	७
६	३	३२	३१
३४	२९	८	१
४	५	३०	३१

इस यंत्र को भोजपत्र पर केसर, गोरोचन या कुमकुम से लिखकर फिर उसे गुगल की धूप दें । यह यंत्र गाय के गले में या भैंस के सींग में बाँधने पर वह बछड़ा लगाने लगेगी और दूध बहुत देगी।

(५) फलवृद्धि यंत्र :

८७	९४	२	८
७	३	९१	९१
९३	८८	९०	१
४	६	८६	९२

इस यंत्र को जमीरी नींबू के रस से भोजपत्र या कागज पर लिखकर अनार या जिस किसी वृक्ष में बाँध दोगे उसमें बहुत फल आयेंगे।

स्वदेशाभिमान

पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर एक प्रसिद्ध शास्त्रीय संगीतज्ञ थे । उन्होंने गंधर्व महाविद्यालय की स्थापना की थी । सन् १९१५ से वे प्रतिवर्ष कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में उपस्थित रहते थे और उन्होंने अधिवेशन के आरंभ में 'वंदे मातरम्' गाने की प्रथा चलायी थी।

सन् १९२३ में कांग्रेस का अधिवेशन आंध्र प्रदेश के काकीनाडा में मौलाना मुहम्मद अली की अध्यक्षता में संपन्न हो रहा था । जब विष्णु दिगंबर पूर्व-परंपरा के अनुसार 'वंदे मातरम्' गाने के लिए खड़े हुए तो मौलाना साहब ने इस पर आपत्ति उठायी और कहा कि उनके मजहब में गाना-बजाना मना है । यह सुनकर वहाँ उपस्थित गाँधीजी तथा अन्य सभी नेता स्तंभित हो गये । विष्णु दिगंबर से रहा नहीं गया । उन्होंने दृढ़ता से प्रतिवाद किया कि ''यह एक राष्ट्रीय मंच है मस्जिद नहीं, जहाँ संगीत पर आपत्ति उठायी जाय।''

अध्यक्ष महोदय अभी कुछ कह भी नहीं पाये थे कि उन्होंने 'वंदे मातरम्' गाना प्रारंभ कर दिया । अध्यक्ष मुहम्मद अली अपने आसन से उठकर बाहर चले गये, परंतु पलुस्करजी ने 'वंदे मातरम्' का गायन चालू रखा । स्वदेशाभिमान तथा मातृभूमि के प्रति उनकी भक्ति ने उन्हें देशवासियों के आदर का पात्र बना दिया । लोगों ने

आसारामजी बापू के दर्शन मात्र से सफल हो जाता है जीवन

जमशेदपुर (बिहार) में आयोजित १५ व १६ मई के पूज्यश्री के सत्संग-समारोह में उपस्थित विशाल जनमेदनी से दैनिक हिन्दुस्तान के संवाददाता रू-बरू हुए व उन्होंने अनेक लोगों से बातचीत की। आत्मनिष्ठ पूज्यश्री के प्रति लोगों की उफनती श्रद्धा, विश्वास और प्रेम को देखकर उन्होंने दाँतों तले उँगली दबा ली। १६ मई को अपने दैनिक हिन्दुस्तान में उन्होंने उसके कुछ अंश प्रकाशित किये। प्रस्तुत हैं वे अंश :

हिन्दुस्तान जमशेदपुर (सं.)। आसारामजी बापू को देखकर ही जीवन सफल हो जाता है। उनके बारे में कुछ भी कहना शून्य के बराबर है। इनकी बात अशिक्षित लोगों के भी समझ में आ जाती है। असाध्य रोगों से पीड़ित लोग इनके बताये उपचारों से अच्छे हो जाते हैं। आसारामजी बापू के प्रति यह विश्वास रविवार की शाम साउथ पार्क मैदान में उपस्थित लोगों में देखने को मिला।

टेल्को में रहनेवाले संजय कुमार सिंह का मानना है कि बापूजी की दृष्टि मात्र से ही जीवन की सभी बुराइयाँ खत्म हो जाती हैं। उनके बारे में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाने के बराबर है। वे बापूजी के बताये रास्ते पर पिछले ८ सालों से चल रहे हैं। इससे उनके अंदर की सभी बुराइयाँ खत्म हो गयी हैं और जीवन में शांति है। पहली बार उन्होंने कोलकाता जाकर बापूजी के दर्शन किये थे। सुंदर नगर के पारसनाथ शर्मा पिछले छः सालों से आसारामजी बापू को जानते हैं। वे कहते हैं कि दूसरी बार बापूजी के जमशेदपुर आगमन के समय संयोग से उनके दर्शन बिष्टूपुर ट्रैफिक सिग्नल पर हो गये। दर्शन मात्र से ही उनका जीवन धन्य हो गया। उसके बाद वे बापूजी के भक्त हो गये। दुःख के समय बापूजी के ध्यान मात्र से उन्हें शांति मिल जाती है। हरहरगुट्टू के रहनेवाले एस.एस. प्रसाद पहली बार बापूजी के दर्शन करने आये हैं। वे कहते हैं कि टी.वी. पर उनका प्रवचन सुनकर ही उनकी जिंदगी खुशमय हो गयी। अब वे उनके दर्शन के लिए आये हैं।

कदमा निवासी रामलखन सिंह वैसे तो निरंकारी बाबा के अनुयायी हैं, पर वे आसारामजी बापू से काफी प्रभावित हैं। बापूजी के दर्शन को पहुँचे श्री सिंह का मानना है कि सभी संतों का रूप एक है। संत परोपकार के लिए ही धरती पर आते हैं। सद्गुरु के वचनों से जीवन की सभी परेशानियाँ दूर हो जाती हैं। धतकीडीह के रहनेवाले मिठाईलाल का कहना है कि बापूजी के प्रवचन से उन्हें एक फायदा हुआ है। वे सोते-जागते 'ॐ राम' का नाम लेते रहते हैं। टेल्को की टी.आर.एफ. कोलोनी के रहनेवाले बालेश्वर ओझा कहते हैं कि वे टी.आर.एफ. में महासचिव थे। प्रबंधन ने उन्हें कंपनी से निकाल दिया। इसके बाद उनके सामने भुखमरी की समस्या उत्पन्न हो गयी। इसी बीच बाबा (पूज्य बापूजी) का जमशेदपुर आगमन हुआ। वे बाबा की शरण में गये। अब उनके परिवार में सभी लोग खुश हैं। परसूडीह के राजेंद्र शर्मा तीन साल पूर्व रतलाम में जाकर बाबा के शिष्य बने। उनका कहना है कि बाबा में उन्हें अपनी मुक्ति दिखायी देती है। वे मानते हैं कि बाबा के दर्शन मात्र से ही उनका धरती पर आना सफल हो गया है।

लिंक रोड, कदमा के जयराम प्रसाद गायत्री परिवार से जुड़े हैं, लेकिन बापूजी की बातें उन्हें अच्छी लगती हैं। उनका कहना है कि बापूजी की बात इतनी सरल होती है कि उसे साधारण आदमी भी समझ लेता है। मानगो के सत्यनारायण साव का कहना है कि बापूजी की हर बात जीवन में उतारने योग्य है। उनके सुझाये हुए रास्ते से असाध्य रोगों से पीड़ित लोग चंगे हो जाते हैं। किताडीह निवासी रघुवंश उपाध्याय पहली बार बापूजी को देखने आये हैं। इसके पहले वे टी.वी. व अखबार के माध्यम से बापूजी की बातों का मनन करते रहे हैं। उनकी बातें उन्हें अच्छी लगती हैं।

कदमा की रहनेवाली शोभा देवी बापूजी की मंगलमय भावना व समाज-कल्याण की बात से प्रभावित हैं। उन्हें बापूजी की बात से मानसिक शांति मिलती है। कदमा की रेनु मंडल बापूजी का गीता-प्रवचन सुनने आयी हैं। उन्हें बापूजी की बातों पर पूरा भरोसा है। कदमा की देविका मंडल ईश्वर पर विश्वास नहीं करती हैं, लेकिन बीमारियों से मुक्ति के लिए बापूजी की बातों को सुनने आयी हैं। जुगसलाई की रहनेवाली शारदा केड़िया बापूजी की बात 'ध्यान करते रहो, जप करते रहो' से काफी प्रभावित हैं। उनका मानना है कि जीवन में किसी एक को सद्गुरु जरूर बनाना चाहिए। सोन्हरी की रहनेवाली मिसीस दाते कहती हैं कि बापूजी के दर्शन मात्र से उन्हें ऊर्जा मिलती है। उन्हींके सहारे वे जीती हैं। उनके पति असाध्य रोग से ग्रस्त थे, अब वे बिल्कुल ठीक हैं। इसका श्रेय वे बापूजी को ही देती हैं।

बिष्टूपुर के गंगोत्री अपार्टमेंट की रहनेवाली वीणा देवी का मानना है कि बापूजी के ध्यान मात्र से सभी संकट दूर हो जाते हैं। धनबाद से आयी गीता देवी कहती हैं कि बापूजी की तस्वीर को देखकर ही उन्होंने उन्हें अपना गुरु मान लिया है। उनके सामने अभी तक जो भी समस्याएँ आयीं, बापूजी के ध्यान मात्र से वे दूर हो गयीं। जुगसलाई की रहनेवाली रेणु देवी का मानना है कि बापूजी की हर बात अच्छी व ज्ञानवर्धक होती है। उनकी बातों से जीवन में शांति मिलती है। काशीडीह की रहनेवाली तनुश्री का मानना है कि बापूजी की बातों से जीवन में राहत व खुशी मिलती है।

श्री सिद्धिमाता

- स्वामी ऋषि कुमार

"श्री सिद्धिमाता के ब्रह्मलीन होने से बारह दिन पूर्व मैं उनके पासवाले कमरे में ध्यान करने बैठा। माताजी की कृपा से मेरा ऐसा ध्यान लगा कि बारह दिन तक न मुझे क्षुधा लगी, न प्यास और न ही निद्रा।"

हरड़बाग-केदारखंड, सोनारपुर, वाराणसी (उ.प्र.) में श्री सिद्धिमाता का आश्रम अवस्थित है और वही उनकी तपःस्थली है। जो भी चुने हुए लोग श्री सिद्धिमाताजी की चरण-सन्निधि में पहुँच सके हैं, उन्होंने प्रत्यक्ष देखा है कि उनकी त्वचा पर देव-देवियों की मूर्तियों, नामों, बीजमंत्रों, प्रणव, गोलोक की लीलादि का प्रकाश होता था। श्री सिद्धिमाता का आविर्भाव-काल श्रावण शुक्लाष्टमी, मंगलवार, संभवतः १२९५ बंगाब्द (ई.स.१८८८) है। यशोहर जिलान्तर्गत ग्राम मल्लिकपुर निवासी श्री वरदाकांत चट्टोपाध्याय (बंगाली ब्राह्मण) उनके पिता थे व माता का नाम था श्यामा सुंदरी देवी। श्री सिद्धिमाता का बाल्यकालीन नाम था कात्यायनी देवी। वे माता-पिता के साथ काशी में तपस्या करने आयी थीं। जहाँ आज श्री सिद्धिमाता का आश्रम है, उस स्थान पर पहले श्री सिद्धिमाता की कुलगुरु माता का निजी मकान था। श्री सिद्धिमाता का तिरोभाव-काल वैशाख कृष्णा सप्तमी, सोमवार, अपराह्न साढ़े ५ बजे, १३५० बंगाब्द (२६ अप्रैल ई.स. १९४३) था। साधना के अंत में त्वचा में वाक्य का प्रकाश हुआ : 'साधनार परिसमाप्ति।' (साधना की परिसमाप्ति) साक्षात् नारायण प्रकट होकर बोले : ''आज से तुम्हारा नाम होगा सिद्धिमाता।''

'नवम दुर्गा सिद्धिदात्री सिद्धिमाता' के नाम से वे जानी जाने लगीं। ठाकुरजी ने ही उन्हें गैरिक वस्त्र परिधान का आदेश दिया। संन्यास हो गया। मुझे श्री सिद्धिमाता के चरणसान्निध्य में केवल ढाई वर्ष रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और मेरे ही सामने वे ब्रह्मलीन हुईं। श्री मौनीमाँ और श्री तरुमाँ श्री सिद्धिमाता की कृपापात्री दो विधवा संन्यासिनी शिष्याएँ थीं। उन्हें आध्यात्मिक अनुभूतियाँ होती थीं।

श्री सिद्धिमाता के ब्रह्मलीन होने से बारह दिन पूर्व मैं उनके पासवाले कमरे में ध्यान करने बैठा। माताजी की कृपा से मेरा ऐसा ध्यान लगा कि बारह दिन तक न मुझे क्षुधा लगी, न प्यास और न ही निद्रा। माताजी मुझ पर पूर्ण कृपा की वर्षा करके गयीं। मुझे गोलोक का अद्भुत दृश्य दिखने लगा। परंतु मेरा आधार दुर्बल था। मैं उस दिव्य तेज को सहन नहीं कर सका। उसे धारण करने में मुझे कठिनाई हुई। जब मैं सँभला तब तक श्री सिद्धिमाता स्वधाम चली गयी थीं। उनके अंतिम शब्द थे : ''ठाकुरजी ! निए चलो, आर पारि ना।'' (ठाकुरजी ! मुझे ले चलो, अब रहा नहीं जाता।) माताजी के हृदय में मैंने देखा राधा-कृष्ण झूला झूल रहे हैं। शरीर बिस्तर पर गिर गया। मैं घबड़ाकर जोर-जोर से रोने लगा। २५ मिनट बाद देखता हूँ तो माताजी पुनः उठकर बैठ गयी हैं। बोलीं : ''तोमार कान्ना सुने फिरे एसेछि। क्रन्दन करो ना, धैर्य राखो। तुमि हृत्कमले आमाके सदा देखिते पाइबे।'' (तुम्हारा रुदन सुनकर लौटकर आयी। क्रन्दन न करो, धैर्य रखो, मुझे अपने हृत्कमल में सदा देख पाओगे।) उनका शरीर पुनः बिस्तर पर गिर गया। भक्त लोग उनकी देह को ले गये और उसे पाषाण की एक पेटी में रखकर केदारघाट गंगा की मध्य धारा में प्रवाहित कर दिया। इस प्रकार एक परम सिद्ध ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष की लीला समाप्त हो गयी। उनकी कायाभेदी दिव्य वाणी रह गयी, जो साधक भक्तों का सदा मार्गदर्शन करती रहेगी।

श्री सिद्धिमाता के भाल की त्वचा में मैंने प्रणववेष्टित राधा-कृष्ण की मूर्ति देखी थी। माताजी की दोनों भौंहों के ऊपर मैंने युगल विष्णुपादपद्म का दर्शन किया था। माताजी ने स्वयं अपने हाथ से उस पर तुलसी-चंदन चढ़ाया और उसे मेरे मुख में डाल दिया। यह थी उनकी अपार कृपा। उनकी त्वचा में से कायाभेदी वाणी निकलते

श्री सिद्धिमाता की त्वचा में से कायाभेदी दिव्य वाणी निकलती थी। इस अलौकिक अपूर्व घटना से नास्तिकता की जड़ पूर्णरूपेण उत्पाटित हो जाती है।

मैंने नहीं देखा। उसके दर्शन का सौभाग्य पं. श्री गोपीनाथ कविराज तथा अन्य भक्तों को प्राप्त हुआ था।

मैंने माताजी से पूछा : ''इतने तमाम वाक्य क्या आपकी त्वचा में से प्रकट हुए हैं ?'' माताजी ने स्पष्ट कहा : ''हाँ।'' मेरे लिए उस पर संदेह का कोई कारण न था, मैंने आगे कुछ नहीं पूछा।

जिस दिन जो वाक्य प्रकट हुआ, पं. श्री गोपीनाथ कविराजजी ने बंग सौर तारीख और शाके संवत् देकर उसे लिखा। तिथि-तारीख कविराजजी द्वारा अपनी स्मृति के लिए लिखी गयी है, वह कायाभेदी नहीं है। एक से सौ तक जो पद संख्या है वह मैंने डाली है। शेष सब वाक्य त्वचा को भेदकर निकले हुए हैं। यही कायाभेदी दिव्य भगवद्वाणी है। पाँच-पाँच घंटे बैठकर श्री कविराजजी इस दिव्य वाणी को लिखते थे। स्वयं कायाभेदी वाणी में भी कई स्थलों पर इसका स्पष्ट उल्लेख है कि अलौकिक रूप से ये दिव्य ब्रह्मवाक्य त्वचा को भेदकर ही निकले हैं। अतः इसमें संशय के लिए कोई स्थान नहीं है। इस अलौकिक अपूर्व घटना से नास्तिकता की जड़ पूर्णरूपेण उत्पाटित हो जाती है। ऐसी घटना पहले किसी भी महात्मा के जीवन में नहीं घटी।

श्री सिद्धिमाताजी 'आमि-आमार' (मैं-मेरा) शब्दों का प्रयोग अपने व्यावहारिक जीवन में भी मुख से कभी नहीं करती थीं और मुझे भी कई बार वैसा करने पर टोकती थीं। उनकी बोलने की शैली थी : 'ठाकुरजी जल खायेंगे, ठाकुरजी खायेंगे, ठाकुरजी स्नानागार जाना चाहते हैं। ठाकुरजी ने अमुक को दीक्षा देने का आदेश नहीं दिया है।' इत्यादि बंगला में बोलतीं। उनकी आँखों की पुतलियाँ बहिर्मुखी होते मैंने कभी नहीं देखा। वे आगन्तुकों को न देखतीं, न किसीको बैठने को कहतीं न जाने को, जिसकी इच्छा हो आ जाय - चला जाय। माताजी के यहाँ भयंकर आचार-विचार था। रास्ते में चलकर बिना वस्त्र बदले, बिना अर्धस्नान किये कोई चरण छूकर उन्हें प्रणाम नहीं कर सकता था।

माताजी का 'मैं-मेरा' परब्रह्म परमात्मा में सदा के लिए विलीन हो गया था। उनकी ब्रह्मनिष्ठा भक्तिमयी, प्रेममयी थी। वे त्याग-वैराग्य की साक्षात् मूर्ति थीं। वे सर्वदा देहस्मृति से ऊपर ब्रह्मभाव में निवास करती थीं। वे बोलतीं : ''दिव्य दृष्टि से शुकदेव-वामदेव दिखायी पड़ते हैं।'' परमहंस रामकृष्ण देव के बारे में वे कहतीं : ''महाकाली माता की गोद में ये बैठे दिखायी पड़ते हैं।'' काशी पंचगंगा घाट में नग्न रहनेवाले श्री तैलंग स्वामी के बारे में कहतीं : ''ये शिवभाव को प्राप्त हैं और काशी विश्वनाथ के दर्शनार्थियों को आशीर्वाद दिया करते हैं।''

जब माताजी की दिव्य दृष्टि खुली तो उन्हें सर्वप्रथम श्री तैलंग स्वामी के ही दर्शन हुए थे। अपनी काशी-तीर्थयात्रा के समय श्री रामकृष्ण परमहंस देव भी श्री तैलंग स्वामी का दर्शन करने गये थे। अर्थात् श्री रामकृष्ण परमहंस के समय श्री तैलंग स्वामी का शरीर धरती पर था। जबकि श्री सिद्धिमाता के समय न था। माताजी ने उनका दिव्य दर्शन किया था। कायाभेदी वाणी में अस्मद् शब्द के रूप - 'मैं, मेरा, मुझको, मुझसे' जो प्रयुक्त हुए हैं, वे सब साक्षात् परब्रह्म परमात्मा, नारायण, विष्णु के वाचक या बोधक हैं। ऐसा नहीं था कि श्री सिद्धिमाता जब चाहें, उनकी काया पर मंत्र, मूर्ति, वाक्यादि प्रकट हो जाते रहे हों। यदि कोई प्रार्थना करता कि 'यह देखना चाहता हूँ, वह देखना चाहता हूँ।' तो वे उत्तर देतीं : ''देखो, ठाकुरजी चाहेंगे तो देख सकते हो।''

माताजी का न 'मैं' था न 'मेरा', न उनकी कोई इच्छा ही थी। न किसीको कोई आशीर्वाद, न शाप। ''ठाकुरजी जो चाहेंगे वह होगा, जो करेंगे वही सिद्ध होगा। पुस्तक पढ़ने से भगवान नहीं मिलते। केवल वेदान्त पढ़ने से आत्मज्ञान नहीं होता। भक्तिगीत गाने और भक्तिग्रंथों का पाठ करने मात्र से भगवान में भक्ति नहीं हो जाती। अखबार पढ़ने से कोई तत्त्ववेत्ता नहीं बन जाता। बाह्य व्यापार अशेषतः छोड़ दो, अंतर को शुद्ध करो। अंतर में दृष्टि स्थिर करो, ठाकुरजी मंजूरी देंगे।'' यही उनकी भाषा थी। यही उनके बोलने का ढंग था। न कहीं आना न जाना, न व्याख्यान न आदेश न उपदेश। बारंबार कोई पूछे तो दो-चार शब्दों में उत्तर। बीच-बीच में अकारण हँसतीं। परिग्रह, पैसा, लोकेषणा से उनको कोई प्रयोजन नहीं था। ऐसी थी उनकी लीला। प्रातः-सायं दिव्य आत्माओं का माताजी के कमरे में जमघट होता था। बाहर तो हम लोग कुछ देखते न थे।

(क्रमशः)

आहार-मात्रा विचार

'चरक संहिता' के रचयिता आचार्य श्री चरक कहते हैं :

मात्राशी स्यात् । आहारमात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी ॥

'मनुष्य को मात्रापूर्वक भोजन करना चाहिए । आहार की मात्रा अग्नि के बल पर आधारित होती है।' **(चरक संहिता, मात्राशितीयाध्याय : ५.३)**

अग्निबल अर्थात् जठराग्नि की भोजन पचाने की शक्ति । यह शक्ति हर व्यक्ति में भिन्न-भिन्न होती है। आहार की जो मात्रा भोजन करनेवाले की प्रकृति में बाधा न पहुँचाते हुए यथासमय पच जाय, वही उस व्यक्ति के लिए प्रमाणित मात्रा है।

आहार न अति मात्रा में लेना उचित है न अल्प मात्रा में। अति मात्रा में सेवन किया गया आहार त्रिदोषों को प्रकुपित करता है। यह जठराग्नि को मंद कर शरीर में जड़ता, आलस्य, तन्द्रा, उदरशूल आदि लक्षणों तथा विविध व्याधियों को उत्पन्न करता है।
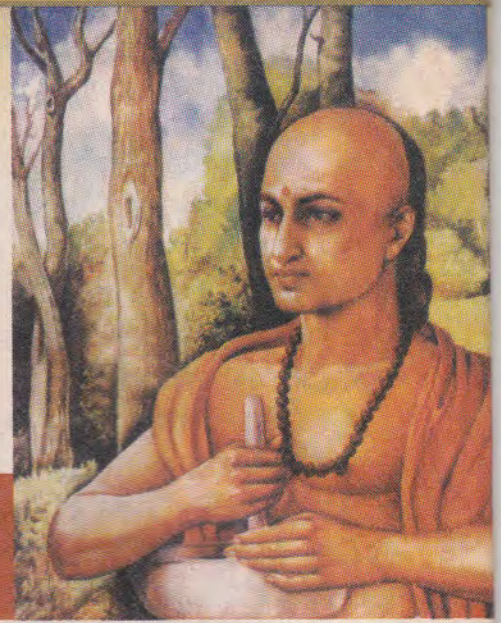
अतिमात्राशनं आमप्रदोषहेतूनाम् ।

'आमदोष को उत्पन्न करनेवाले कारणों में अधिक मात्रा में भोजन प्रधान कारण है।'

(चरक संहिता, सूत्रस्थानम् : २५.४०)

जैसे आहार का अति सेवन सभी दोषों का प्रकोपक व रोगों का निमित्त कारण है, वैसे ही आवश्यकता से कम मात्रा में आहार का सेवन बल, वर्ण, वीर्य व ओज का नाश करनेवाला तथा ८० प्रकार के वातरोगों का कारण है। कम मात्रा में सेवन किया गया आहार मन को उदासीन व अतृप्त, इन्द्रियों को निर्बल तथा शरीर को कृश व दुर्बल बनाता है। जबकि आहार का सम्यक् मात्रा में सेवन मन को संतुष्ट व शरीर को पुष्ट करता है।

आहार न अधिक मात्रा में हो न अल्प मात्रा में, इसलिए उचित है कि हम अपने उदर के तीन कल्पित विभाग करके एक भाग घनरूप आहार के लिए (जैसे रोटी, चावल, सब्जी आदि), एक भाग द्रवरूप आहार के लिए (जैसे छाछ, पानी आदि) व एक भाग वात-पित्त-कफ इन त्रिदोषों के लिए खाली रखें क्योंकि पेट का एक तिहाई भाग खाली रखने से जठराग्नि प्रकुपित दोषों का शमन करती है।

मात्रापूर्वक आहार के लक्षण :

भोजन करने के बाद पेट में दबाव अथवा भारीपन न हो, पार्श्वों में (पेट की दोनों तरफ) तनाव अथवा पीड़ा न हो, हृदय की गति में रुकावट न पड़े, इन्द्रियाँ तृप्त रहें, भूख-प्यास शांत हो जाय, प्रातः किया हुआ भोजन सायंकालपर्यंत और सायंकाल में किया हुआ भोजन सुबह तक निर्विघ्न पच जाय तथा उठने, बैठने, सोने, चलने, श्वास लेने-छोड़ने, हँसने, बातचीत करने में कठिनाई का अनुभव न हो और परिणाम में बल, वर्ण व पुष्टि की प्राप्ति हो - ये मात्रापूर्वक सेवन किये गये आहार के लक्षण हैं।

पित्तप्रधान व्यक्तियों की जठराग्नि तीव्र होती है । अतः वे स्निग्ध, मधुर, भारी पदार्थ पचाने में समर्थ होते हैं। उन व्यक्तियों को निश्चित समय पर उचित मात्रा में स्निग्ध, मधुर, कसैले व कड़वे पदार्थों का सेवन करना चाहिए। अधिक उपवास रखना उनके लिए हानिकारक है।

कफप्रधान व्यक्तियों की जठराग्नि मंद होती है । उनके लिए रुक्ष, उष्ण, हलका व अल्प भोजन पर्याप्त होता है। जठराग्नि को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें उपवास रखने चाहिए।

वातप्रधान व्यक्तियों की जठराग्नि विषम अर्थात् कभी तीव्र तो कभी मंद होती है। अतः उनके लिए आहार की मात्रा भी उनकी जठराग्नि की प्रकृति के अनुसार बदलनी आवश्यक है।

जठराग्नि के बल (पाचनशक्ति) में ऋतु के अनुसार परिवर्तन होता है, अतः आहार की मात्रा में भी ऋतु-अनुसार परिवर्तन करना आवश्यक है।

शीत ऋतु (हेमंत व शिशिर) में जठराग्नि अत्यंत तीव्र होती है, जिससे पौष्टिक, भारी पदार्थों का पाचन सरलता से हो जाता है। इन ऋतुओं में अल्प व रुक्ष आहार निषिद्ध माना गया है, क्योंकि तीव्र जठराग्नि को पचाने के लिए भारी पदार्थ न मिलने पर वह शरीर की धातुओं को जलाकर शरीर को दुर्बल कर देती है।

प रि प्र
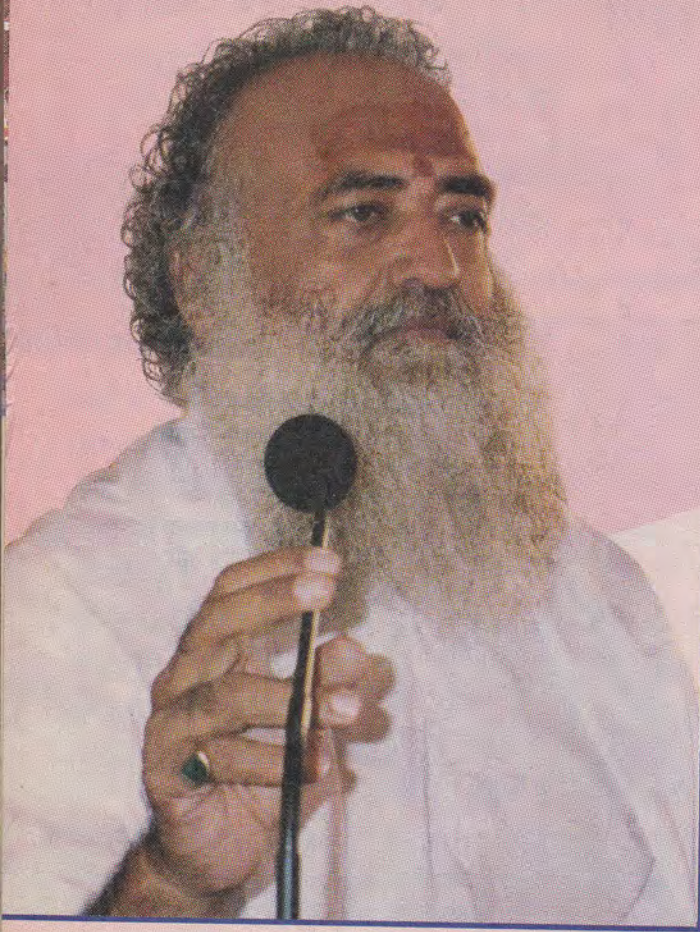
'कुछ खाना है किंतु पचता नहीं है।' 'शराब पीनी है किंतु पैसे नहीं हैं।' 'लड़के की शादी में खर्च करके रुआब दिखाना है किंतु क्या करें, आयकरवालों का डर है।'- इस प्रकार का दुःख 'ताप दुःख' कहलाता है।

प्रश्न : बड़े-में-बड़ा पाप क्या है ?

पूज्य बापूजी : बड़े-में-बड़ा पाप है जगत के भोगों को सच्चा मानकर जगदीश्वर को भूलना। जो जगत को सत्य मानकर व्यवहार करता है, वह चौरासी के चक्कर में ही घूमता रहता है परंतु जो उसे मिथ्या मानकर जगदीश्वर में मन लगाता है और संयम-सदाचार को अपनाता है, वह देर-सवेर जगदीश्वर का अनुभव पाने में भी सफल हो जाता है।

प्रश्न : मन परमात्म-ध्यान में क्यों नहीं लगता और वह कैसे लगे ?

पूज्य बापूजी : मन के परमात्म-ध्यान में न लगने के चार कारण हैं :

पहला है आहार की अशुद्धि। अशुद्ध आहार करोगे तो तमोगुण आयेगा, कामविकार जगेगा, तंद्रा आयेगी, आलस्य आयेगा जिसके फलस्वरूप मन परमात्म-ध्यान में नहीं लगेगा।

दूसरी बात चित्त में अगर राग-द्वेष होगा और ध्यान में बैठोगे तो या तो मित्र को याद करोगे या शत्रु को। जहाँ महत्त्वबुद्धि होती है या जिसकी ओर आकर्षण अधिक होता है, आँखें बंद करने पर वही दिखेगा।

तीसरी बात है कर्मों की अपवित्रता। हम यदि अहंकार को सजाने के लिए कर्म करते हैं, वासनापूर्ति के लिए कर्म करते हैं तो वे कर्म बंधनरूप हो जाते हैं और मन को अशांत कर देते हैं। फिर मन परमात्म-ध्यान में नहीं लगता।

चौथी बात है वाणी की अपवित्रता। गाली-गलौज करके आये और ध्यान में बैठे तो मन में उन्हीं गालियों की पुनरावृत्ति होगी, मन उधर ही जायेगा, ध्यान में नहीं लगेगा।

वाणी ऐसी बोलिये जो मनवा शीतल होय।
औरन को शीतल करे आपहुँ शीतल होय॥

जो शीतल वाणी बोलना जानते हैं, हृदय को शुद्ध रखना जानते हैं, उनके पास तो वशीकरण मंत्र आ जाता है।

ग्रीष्म ऋतु के बाद आनेवाली वर्षा ऋतु में जठराग्नि अत्यधिक दुर्बल हो जाती है। इसलिए इन दिनों में व्रत-उपवास का विधान है।

जैसे षड्ऋतुओं का प्रभाव जठराग्नि पर पड़ता है, वैसे ही दिन के विभिन्न प्रहरों का भी पड़ता है। सुबह के समय कफ की प्रधानता होती है, अतः जठराग्नि मंद होती है। इसीलिए भारतीय परंपरा के अनुसार शीत ऋतु को छोड़कर अन्य ऋतुओं में सुबह नाश्ता करने का विधान नहीं है। मध्याह्नकाल पित्त की प्रधानता का समय है। इस समय जठराग्नि प्रदीप्त रहती है। अतः इस समय षड्रसयुक्त भोजन का मात्रावत् सेवन करें। सायंकाल वात की प्रधानता का काल है। इस समय अल्प आहार लेना उचित है। रात के समय जठराग्नि का बल अत्यंत अल्प होता है। देर रात को किया हुआ भोजन अपक्व अवस्था में आँतों में पड़ा रहता है। इसलिए देर रात को भोजन नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार उचित काल में उचित मात्रा में अन्न का सेवन करने पर जठराग्नि सही रूप से कार्य करती है और स्वास्थ्य उत्तम रहता है। हमारे हितैषी ऋषि-मुनियों ने देश-काल-ऋतु आदि का विचार कर हमारी प्रकृति के अनुसार आहार-विहार का जो निर्देश किया है, उसका पालन कर हम बल, वर्ण, सुख और पूर्ण आयुष्य की प्राप्ति कर सकते हैं। आचार्य श्री चरक कहते हैं :

गुरूणामर्धसौहित्यं लघूनां नातितृप्तता।
मात्राप्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावद्विजीर्यति ॥

'पचने में भारी पदार्थों का सेवन आधी भूख रखकर करना चाहिए। पचने में हलके पदार्थों का सेवन भी अति मात्रा में नहीं अपितु थोड़ी भूख रखकर ही करना चाहिए व पचने में अत्यंत हलके तथा द्रव पदार्थों (जैसे - मूँग का पानी, छाछ आदि) का सेवन तृप्तिपर्यंत करना चाहिए।'

(चरक संहिता, सूत्रस्थानम्, मात्राशितीयाध्याय : ५)

अल्प मात्रा में सेवन करने से गुरु (पचने में भारी) पदार्थ भी लघु (पचने में हलके) हो जाते हैं और स्वभाव से लघु पदार्थ भी अधिक मात्रा में लेने पर गुरु हो जाते हैं।

लघु पदार्थों का क्वचित् अधिक सेवन हो भी जाय तो वे विशेष हानि नहीं पहुँचाते परंतु गुरु पदार्थों का अति सेवन शरीर में भयंकर उपद्रव उत्पन्न करता है। अतः सावधानी से एवं विचारपूर्वक भोजन करना चाहिए।

कोष्ठशुद्धि कल्प

कुछ रसायन द्रव्य सप्तधातुओं की वृद्धि कर शरीर को बलवान व वीर्यवान बनाते हैं, जैसे - दूध, घी, सुवर्ण आदि और कुछ सप्तधातुओं की शुद्धि कर शरीर को निर्मल बनाते हैं और धातुपोषण का मार्ग खुला कर देते हैं, जैसे - आँवला, हर्रे, विडंग आदि। ऐसे सप्तधातु-वृद्धिकर एवं शरीरशोधक रसायन द्रव्यों के सम्मिश्रण से बनाया गया एक श्रेष्ठ आयुर्वेदिक कल्प है 'कोष्ठशुद्धि कल्प'।

यह कल्प शरीर में संचित मल, दोष तथा अन्य हानिकारक विजातीय द्रव्यों को शरीर से बाहर निकालकर शरीर को शुद्ध करता है। इससे रोग-प्रतिकारक शक्ति बढ़ती है। सभी अंग-प्रत्यंग तथा इन्द्रियाँ निर्मल हो जाती हैं व उनकी कार्यक्षमता बढ़ जाती है। पूरे शरीर में शक्ति, ताजगी व स्फूर्ति का संचार होता है।

कल्प के घटक-द्रव्य तथा उनके गुणधर्म

(१) विडंग : यह जठराग्निवर्धक, आमपाचक, रक्तशुद्धिकर, श्रेष्ठ कृमिनाशक, मस्तिष्क को बल प्रदान करनेवाला रसायन द्रव्य है। यह दूषित कफ के कारण उत्पन्न होनेवाले कृमियों का नाश करता है, अतः बालकों के लिए हितकर है।

(२) तुलसी बीज : ये स्निग्ध, दीपक, पाचक, त्रिदोषशामक, कृमिनाशक, मूत्र खुलकर लानेवाले, हृदय के लिए हितकारी व उत्कृष्ट शुक्रधातुवर्धक हैं।

(३) कुबेराक्ष : यह अग्निदीपक, रक्तशोधक, ज्वरनाशक व कृमिनाशक है तथा यकृत व प्लीहा की कार्यक्षमता बढ़ाता है।

(४) इन्द्रजव : यह त्रिदोषशामक, कृमिनाशक व आँतों को बल प्रदान करनेवाला है।

कल्प के लाभ

* यह कल्प कोष्ठ अर्थात् पेट के सभी प्रमुख अंगों जैसे यकृत (लीवर), वृक्क (किडनी), प्लीहा (स्प्लीन), जठर तथा आँतों को साफ कर उनकी कार्यक्षमता बढ़ाता है। जिससे कई संभावित रोगों से रक्षा होती है।
* यह जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। अतः मंदाग्नि, संग्रहणी, पेचिश, बवासीर, उदरशूल, प्रवाहिका, कब्ज, अफरा आदि पेट की बीमारियों में लाभदायी है।
* यह रक्तशुद्धिकर होने के कारण त्वचा-विकारों में भी लाभदायी है।
* यह कृमि व कफ नाशक है, अतः बालकों के लिए विशेष हितकर है।

३० दिन तक इस कल्प का नियमित सेवन करने से कोष्ठशुद्धि होकर शरीर के समुचित विकास में मदद मिलती है।

यह कल्प समिति ने वैद्या नीता बहन की देखभाल में बनाया है। इसके सेवन से लोगों को विभिन्न रोगों में बड़ा लाभ हो रहा है। जनता-जनार्दन संतुष्ट होकर वैद्या नीता बहन और समिति को, जिनका उद्देश्य समाज-सेवा है, खूब-खूब धन्यवाद दे रहा है।

सत्संग बिना मानव-जीवन यों ही बिखर जायेगा ।

जयपुर (राज.), २३ अप्रैल : चैत्री पूर्णिमा की पूर्वसंध्या पर राजस्थान की राजधानी गुलाबी नगरी जयपुर में पूज्यश्री का पदार्पण व नवनिर्मित आश्रम का उद्घाटन हुआ। ग्रीष्म ऋतु की तपन को दूर करने के लिए इन्द्रदेव ने रिमझिम बारिश की तो वायुदेव ने भी अपने झोकों से वातावरण को खुशनुमा बनाया। पूज्यश्री के आगमन से पूर्व जहाँ लोग ग्रीष्म ऋतु की तपन से तप्त थे, वहीं पूज्यश्री के शुभागमन के पश्चात् परिवर्तित वातावरण से लोगों ने राहत की साँस ली। जयपुर के बाद दिल्ली, लखनऊ, इलाहाबाद आदि स्थानों पर भी यही नजारा रहा।

नई दिल्ली, २४ से २६ अप्रैल : यहाँ तीन दिवसीय सत्संग-कार्यक्रम के प्रथम दिन लाल किले के सामने श्रद्धालुओं से खचाखच भरे परेड ग्राउन्ड में उपस्थित जनसमुदाय को हनुमान जयंती की बधाई देते हुए पूज्यश्री ने कहा कि ''हनुमानजी की यह चौपाई मंत्ररूप है :

नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा॥
(श्री हनुमान चालीसा)

शीघ्र लाभ हेतु मंत्रजप की विधि :

१. दायें एवं बायें नथुने से क्रमशः दस बार श्वास लें और छोड़ें।

२. फिर दोनों नथुनों से श्वास लें, एक मिनट तक अंदर रोकें और उक्त चौपाई का एक बार जप करें। फिर धीरे-धीरे श्वास बाहर छोड़ें और ४० सेकंड तक उसे बाहर ही रोकें। इस समय में भी चौपाई का एक बार जप करें। यह क्रम भी दस बार करें।

३. दिन में अन्य समय भी इस मंत्र की आवृत्ति करते रहें।

ऐसा करने से बुढ़ापे में होनेवाले ८० प्रकार के वात-सम्बंधी रोगों में निश्चित ही आराम मिलता है। हृदयरोग तथा अन्य छोटे-मोटे रोग भी ठीक होते हैं। श्रद्धापूर्वक जप करते रहें तो अवश्य-अवश्य लाभ होता है।''

लखनऊ (उ.प्र.), २८ व २९ अप्रैल : उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में पूज्य बापूजी के अवतरण-दिवस के अवसर पर पूज्यश्री की साक्षात् उपस्थिति से विशाल स्थानीय जनसमुदाय में हर्षोल्लास का वातावरण रहा। अम्बेडकर मैदान में श्रद्धा-भक्ति और विश्वास का सैलाब उमड़ा। आरती की वेला में जगमगाते असंख्य दीये, जय-जयकार और संकीर्तन से अत्यंत मनोहारी दृश्य का सृजन हुआ। इस अवसर पर आश्रम की ओर से १०० निर्धन परिवारों को हर माह अनाज व जीवनोपयोगी वस्तुओं के निःशुल्क वितरण हेतु कार्डों का वितरण भी किया गया।

अमेठी (उ.प्र.), २९ अप्रैल की शाम से १ मई : प्रथम दिन शाम को श्री सुरेशानंदजी का सत्संग हुआ। अमेठी में पहली बार पधारे पूज्यश्री के वचनामृत को सुनने व पूज्यश्री के करीब से दर्शन करने के इच्छुक लोगों की विशाल भीड़ ने पंडाल ही नहीं, विशाल मैदान को भी नन्हा साबित कर दिया। बड़ी संख्या में लोग पंडाल के बाहर जहाँ भी जगह मिले वहाँ बैठे और काफी लोग तो खड़े-खड़े ही घंटों सत्संग-श्रवण कर मंत्रमुग्ध हुए। स्थानाभाव के कारण लोग सड़क पर खड़े-खड़े भी सत्संगामृत का पान करते रहे। पूज्यश्री ने उन्हें सिर पर टोपी अथवा कपड़ा रखने की सलाह दी ताकि तेज धूप से होनेवाली शारीरिक हानि तथा ज्ञानतंतुओं पर होनेवाले कुप्रभावों से वे बच सकें।

अमेठीवासियों की उफनती श्रद्धा ने पूज्यश्री का हृदय जीत लिया।

प्रयागराज (उ.प्र.), १ मई की शाम से ३ मई : सृष्टि-रचयिता प्रजापति ब्रह्माजी एवं भारद्वाज ऋषि की तपोभूमि तथा गंगा, यमुना व अदृश्य सरस्वती के पावन संगम-स्थल प्रयाग में १ से ३ मई तक तीन दिवसीय सत्संग-महोत्सव संपन्न हुआ। प्रथम दिवस श्री सुरेशानंदजी ने अपने प्रवचन में 'गुरुभक्तियोग' का सुंदर निरूपण किया। दूसरे व तीसरे दिन सत्संग-स्थल पर हजारों-हजारों श्रद्धालुओं की भीड़ उमड़ पड़ी। उनके पंथ अलग-अलग, सम्प्रदाय अलग-अलग पर सबका लक्ष्य एक, सबका आकर्षण-केन्द्र एक - पूज्य बापूजी का दर्शन-सत्संग।

प्रयागवासियों ने जब पूज्यश्री को व्यासपीठ पर प्रेमावतार रूप में सत्संग करते हुए पाया तो उनके उत्साह, उमंग एवं भक्ति-रंग का ऐसा नजाऱा दिखा कि बस, अब तो :

आँखों में गुरुदेव हैं, होंठों पे गुरुमंत्र,
प्रयागराज में मिला जब, बापू का सत्संग।
साधक शिष्यों को मिला, सद्गुरु का जब संग,
बापू ने बरसाया तब, भक्तिभाव का रंग॥

भक्तिभाव के इस पुनीत वातावरण में जब पूज्यश्री ने भक्तियोग, कर्मयोग और ज्ञानयोग की त्रिवेणी प्रवाहित की तो प्रयागवासियों की मानव-काया निहाल हो उठी।

सत्संग का प्रभाव महान, जीवन निखर जायेगा ॥

विश्ववंदनीय संत पूज्य बापूजी ने कहा : ''भारत शीघ्र ही विश्व-धर्मगुरु के रूप में प्रतिष्ठापित होगा, उसे उसकी प्राचीन गरिमा मिलकर रहेगी। शीघ्र ही संस्कारों का बीज वृक्ष का रूप ग्रहण करेगा और भारतीय संस्कृति विश्व में उच्च शिखर पर प्रतिष्ठापित होगी।''

वाराणसी (उ.प्र.), ३ मई की शाम से ५ मई : पूज्यश्री के वाराणसी आगमन पर वरुणा नदी के किनारे हरहुआ में स्थित नवनिर्मित आश्रम का उद्घाटन संपन्न हुआ।

यहाँ का तीन दिवसीय सत्संग-कार्यक्रम 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' के स्थापना-स्थल पर बने विशाल पंडाल में संपन्न हुआ।

काशिनाथ, भोलेनाथ की इस नगरी में उमड़ी विशाल जनमेदनी को संबोधित करते हुए पूज्यश्री ने दो उदाहरण दिये। उन्होंने कहा कि ''ये दोनों उदाहरण काशी से जुड़े हैं। एक उदाहरण है संत कबीरजी का तो दूसरा है महामना मदनमोहन मालवीयजी का। इस देश में संत बहुत हुए, समाजसेवक भी बहुत हुए परंतु कबीरजी एक ही हुए और महामना भी भारत के एक ही व्यक्ति के नाम के आगे लगता है।''

परम पूज्य बापूजी ने दोनों महापुरुषों के जीवन के प्रेरणाप्रद प्रसंग सुनाये व उनके जीवन से प्रेरणा लेकर उनके सरलता, सहजता, साहस, निःस्वार्थता तथा ईश्वर की अखंड सत्ता के प्रति अविचल निष्ठा आदि सद्गुणों को अपने जीवन में भी सँजोने की प्रेरणा दी।

पटना (बिहार), ७ व ८ मई :

समाचार पत्र 'आज', पटना, ९ मई।

सत्संग का कीर्तिमान स्थापित हुआ गाँधी मैदान में

संत श्री आसारामजी बापू का द्विदिवसीय यह सत्संग-कार्यक्रम अभूतपूर्व, अप्रत्याशित और अनोखा रहा। ऐसा विराट सत्संग पाटलीपुत्र के जनसामान्य के लिए दुर्लभ दर्शन रहा। पटना में पधारे अब तक के सभी संतों के सत्संगों पर भारी पड़ा संत श्री आसारामजी बापू का यह सत्संग ! बापूजी को देखने पहुँचे श्रद्धालुओं में बापूजी के प्रति श्रद्धा, भक्ति और सेवाभाव देखते ही बनता था। जिधर भी जाइये, 'हरि ॐ' से सम्बोधन होता।

संत श्री आसारामजी बापू का सत्संग सबसे निराला होता है। बापूजी एकमात्र ऐसे संत हैं जो लोगों को अपनी वाणी से आध्यात्मिक ज्ञान, साहित्य से अध्ययनशीलता, दृश्य-श्राव्य सामग्रियों से भावशुद्धि तथा औषधियों से रोगमुक्ति प्रदान कर उन्हें परमात्मप्राप्ति करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इस प्रकार की संत-परम्परा भारतीय संत-परम्परा में एक नये युग का सूत्रपात करती है। इसका कल्याणकारी स्वरूप भविष्य ही व्यक्त करेगा।

दरभंगा (बिहार), ९ मई : मिथिला नगरी में पूज्यश्री के प्रथम आगमन पर मिथिलावासी फूले न समाये। राज मैदान परिसर में सत्संग करते हुए पूज्यश्री ने कहा कि ''सत्संग से मनुष्य स्वयं तो पापमुक्त होता ही है, साथ ही वह अपनी सात पीढ़ियों को भी तार देता है और सत्संग की महिमा मिथिलावासियों से ज्यादा दूसरा कौन समझ सकता है ? यहाँ राजपद सुशोभित कर चुके २२वें जनक ने परमात्मा की कथा-सत्संग कराया था। यह सत्संग की ही महिमा थी कि राजा जनक के पूर्वज राजा अज का कई योनियों में भटकने के बाद उद्धार हो सका।''

पूज्य बापूजी ने मिथिलावासियों को हिदायत देते हुए कहा कि ''कैसी भी कठिन परिस्थिति आये सत्संग से नाता मत तोड़ना।''

भागलपुर (बिहार), १० व ११ मई : यहाँ के दो दिवसीय सत्संग-कार्यक्रम के दौरान ११ मई को अक्षय-तृतीया के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए पूज्यश्री ने 'भविष्य पुराण' का उद्धरण देते हुए कहा :

स्नात्वा हुत्वा च दत्त्वा च जप्त्वानन्तफलं लभेत्।

'अक्षय-तृतीया को दिये गये दान और किये गये स्नान, जप, तप, हवन आदि कर्मों का शुभ और अनंत फल मिलता है।' इस दिन किये गये सभी कर्मों का फल अक्षय हो जाता है इसलिए इसका नाम 'अक्षय-तृतीया' पड़ा। सत्य युग का तथा कल्पभेद से त्रेता युग का प्रारंभ इसी तिथि से हुआ है। कृषि-जगत में ऐसी मान्यता है कि इस दिन कृषि-कार्य का आरंभ शुभ और समृद्धिदायक होता है। इसी दिन बदरिकाश्रम में भगवान बद्रीनाथ के पट खुलते हैं।

कोलकाता (प. बंगाल), १३ से १५ मई : **'सर्वभूतहितेरताः'** उक्ति के मूर्तस्वरूप पूज्य बापूजी ने सत्संग-पंडाल में उपस्थित हजारों-हजारों स्त्री-पुरुषों से दक्षिणा की माँग करते हुए कहा कि ''जो पान मसाला, गुटखा, मद्यपान आदि जो भी व्यसन करते हैं, वे उन्हें छोड़ने का संकल्प लें और महिलाएँ लाली-लिपस्टिक आदि के त्याग का संकल्प लें तो मैं समझूँगा कि मुझे दक्षिणा मिल गयी।''

पूज्यश्री के समाजहितकारी आवाहन पर इस व्यसनमुक्ति-वेला में हजारों-हजारों भाई-बहनों ने हाथ

उठाकर अपनी सहमति दर्शायी। पूज्यश्री ने शंख बजाकर उसकी वीर-ध्वनि द्वारा संकल्पकर्ताओं के संकल्प को दृढ़ता दी।

जमशेदपुर (झारखंड), १५ मई की शाम से १६ मई : परम पूज्य बापूजी के भक्तिरंग में रँगे २०० साधकों का समूह रायरंगपुर (उड़ीसा) से पदयात्रा करते हुए यहाँ पहुँचा। यह श्रद्धालु मंडली तीन दिन तक पैदल यात्रा करते हुए १५ मई को सत्संग-स्थल पर पहुँची, जहाँ समिति के सदस्यों ने उनकी अगवानी की। भीषण गर्मी के कारण कइयों के पैरों में छाले पड़ गये थे, परंतु उनका कहना था कि गुरुदेव के दर्शन होते ही उनके सारे दुःख - सारी तकलीफें दूर हो गयीं। धन्य हैं वे गुरुभक्त ! उनमें बच्चे और महिलाएँ भी शामिल थे।

राँची (झारखंड), १७ व १८ मई : झारखंड की राजधानी राँची में पूज्यश्री के आगमन से हुआ श्रद्धा, भक्ति, आस्था और विश्वास का संगम देखते ही बनता था। श्रद्धालुगण पंडाल में आगे स्थान पाने के लिए निर्धारित समय से घंटों पूर्व सत्संग-स्थल पर पहुँच जाते थे। हर किसीको ललक थी परम पूज्य बापूजी का निकट से दर्शन पाने की। इस दुर्लभ अवसर को कोई भी श्रद्धालु अपने हाथों से निकलने नहीं देना चाहता था। ये दो दिन संपूर्ण राजधानी हरिमय रही।

हरिद्वार (उत्तरांचल), २१ से २३ मई : यहाँ तीन दिवसीय सत्संग-कार्यक्रम के प्रथम दिन ही पंतद्वीप पर बना विशाल पंडाल अत्यंत नन्हा साबित हो गया। शाम तक तो श्रद्धालुओं की विशाल भीड़ ने कुंभ महोत्सव जैसा माहौल सर्जित कर दिया।

२३ मई को वैशाखी पूर्णिमा के दिन तो देशभर से आये पूर्णिमा व्रतधारियों के सैलाब से संपूर्ण देवनगरी हरिद्वार हरिमय हो गयी थी। पूज्य बापूजी के सत्संग-दर्शन के लिए संपूर्ण उत्तरांचल से लाखों की जनमेदनी उमड़ी - यह कई दिनों तक लोगों में चर्चा का विषय रहा। गिरि, पुरी, त्यागी, मंडलेश्वर आदि साधु-समाज भी सैकड़ों-हजारों की तादाद में लोकलाड़ले पूज्य बापूजी की सत्संग-सरिता में नहाया और प्रभु-प्रेम का प्रसाद पाकर पुलकित हुआ।

ज्ञान, भक्ति व योग की दुर्लभ कुंजियों एवं स्वस्थ, सुखी और सम्मानित जीवन जीने की विभिन्न अनुभवसिद्ध युक्तियों से भरपूर ब्रह्मनिष्ठ पूज्य बापूजी के अमृतमय वचनों ने जनसैलाब पर अद्भुत छाप छोड़ी।

सहारनपुर (उ.प्र.), २९ से ३१ मई : यहाँ पूज्यश्री का त्रिदिवसीय सत्संग-कार्यक्रम संपन्न हुआ।

दैनिक जागरण सहारनपुर, ३० मई।

छलका धर्म का अमृत।

बापूजी के प्रवचन से गूँज उठी सहारनपुर की धरती।
गाँधी पार्क मैदान हुआ धार्मिक नगरी में तबदील।

संत श्री आसारामजी बापू के आभामंडल में सचमुच वह दिव्य तेज विद्यमान है जो श्रद्धालुओं को चुंबकीय शक्ति के समान अपनी ओर खींचता है। उनके प्रवचनों में भी ईश्वर का एहसास करानेवाली वह धारा मौजूद है, जिसमें हर वह शख्स दिव्य चमक की अनुभूति करता है जो कि ईश्वरीय शक्ति में विश्वास रखता है। बापूजी के ऐसे ही अपार गुणों का प्रतिफल रहा कि आज जिले ही नहीं, बल्कि दूर-दराज के क्षेत्रों से सवा लाख से भी अधिक का जनसैलाब उनके प्रवचनों को सुनने टूट पड़ा। बापूजी के प्रवचनों में लाखों के जनसैलाब को देख हर कोई उनके आभामंडल की चमक तथा अमृतवचनों में ईश्वरीय एहसास की झलक पर चर्चा करता हुआ नजर आया। अपार भीड़ को देखकर धार्मिक विद्वान भी चकित थे। वे इस बात को आज पुष्ट करते नजर आये कि ज्यों-ज्यों धरती पर पाप बढ़ेगा त्यों-त्यों लोग भक्ति की ओर बढ़ेंगे।

पूज्यश्री के आगामी सत्संग-कार्यक्रम

(१) पठानकोट (पंजाब) : ७ व ८ जून। स्थल : गवर्नमेंट सीनियर सेकंडरी स्कूल, लामिनी।
संपर्क : (०१८६) २२२७७४९, २२२८५६६, ९८१४३८३८३४, ९४१७३८६११३.

(२) जम्मू (जम्मू-कश्मीर): १० से १२ जून। स्थल : संत श्री आसारामजी आश्रम, भगवती नगर।
संपर्क : (०१९१) २५०३८९४, २५३२५४६, ९४१९१८१३२५, ९४१९१९२५२८.

*R.N.I. NO. 48873/91 POSTAL REGISTRATION. NO. GAMC-1132. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207(DATE OF ISSUE 22-5-2003 & VALID UP TO 31-12-2005). POSTING FROM AHMEDABAD 2-15 OF EVERY MONTH. * MBI PATRIKA CHANNEL, MUMBAI-101, WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. NW-9 REGD NO. TECH/47-833/2003-05 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH. * FOREIGN POSTING 5 & 6 OF EVERY MONTH FROM AIRPORT PO. - 400099. * DELHI REGD. NO. DL-11513/2003-05 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2003-05 POSTING FROM DELHI 5-6 OF EVERY MONTH.

हरिकीर्तन में मस्त यह विशाल जनधारा है अमदावाद (गुज.) के श्रद्धालुओं–भक्तों की। अपने सद्गुरुदेव का अवतरण–दिवस मनाते हुए, स्वहृदय में भी परमात्म–प्राकट्य का आशादीप जला रहे हैं सद्गुरु के ये प्यारे।

राँची (झारखंड) के सत्संगी एवं उनके बीच बैठकर सत्संग–श्रवण कर सद्भागी हो रहे हैं यहाँ के मुख्यमंत्री श्री अर्जुन मुंडा।

सामान्यतया जब कहीं इतनी भीड़ इकट्ठी होती है तो शोरगुल होने लगता है किंतु बापूजी के प्रवचन का यह कैसा अनोखा प्रभाव है कि लाखों की भीड़ और बिल्कुल स्तब्धता!
हर व्यक्ति मानों, अपनी साँस रोककर प्रवचन सुन रहा है। – पटना (बिहार) के सत्संग का एक दृश्य

श ने न...

आप सात्त्विक खान-पान करें, ईश्वर में राग रखें, भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म कर अपने कर्मों को दिव्य बनायें तथा मधुर, संयमित एवं सारगर्भित बोलें, इससे आपका सत्त्वगुण बढ़ेगा । सत्त्वगुण बढ़ने से अंतर्मुखता बढ़ेगी। अंतर्मुख होकर प्रीतिपूर्वक भगवान का सुमिरन करें - प्रार्थना करें, फिर ध्यान में सफल होने लगोगे।

प्रश्न : परिणाम दुःख, ताप दुःख और संस्कार दुःख क्या हैं ?

पूज्य बापूजी : सब भोगों के परिणाम में दुःख छिपा है। भोग भोगते समय तो मजा आता है, किंतु परिणाम में बल, बुद्धि, तेज, तंदुरुस्ती, आयुष्य - सब क्षीण हो जाते हैं। मीठा खाते समय तो मजा आता है, किंतु ज्यादा खाने पर मधुमेह हो जाता है... परिणाम दुःखद आता है। फिल्म देखने में तो मजा आता है किंतु धीरे-धीरे उसकी लत लग जाती है और आँखें कमजोर हो जाती हैं, ओज-वीर्य व चरित्र का नाश हो जाता है... परिणाम दुःखद आता है। यह हो गया 'परिणाम दुःख'।

दूसरे प्रकार का दुःख है 'ताप दुःख' । इच्छित भोग यदि पूरे नहीं मिलते अथवा हम उन्हें भोग नहीं पाते हैं तो ताप होता है। जैसे - 'कुछ खाना है किंतु पचता नहीं है।' 'शराब पीनी है किंतु पैसे नहीं हैं।' 'लड़के की शादी में खर्च करके रुआब दिखाना है किंतु क्या करें, आयकरवालों का डर है।'- इस प्रकार का दुःख 'ताप दुःख' कहलाता है।

तीसरा है 'संस्कार दुःख' । 'पुत्र, पत्नी, परिवार - सब ठीक हैं किंतु उनमें कहीं झगड़ा न हो जाय...' 'धंधा अच्छा चल रहा है किंतु उसमें कहीं घाटा न पड़ जाय...' 'नौकरी में अभी तो साहब अनुकूल हैं किंतु कहीं नाराज न हो जायें... क्या पता आखिर में क्या हो जाय ?' - यह है 'संस्कार दुःख'।

प्रश्न : 'भगवान' शब्द से क्या अभिप्राय है ?

पूज्य बापूजी : 'भगवान' शब्द में चार वर्ण हैं - 'भ', 'ग', 'वा', 'न'।

'भ' माने भरण-पोषणी सत्ता अर्थात् जिस चैतन्य की शक्ति से भरण-पोषण का ज्ञान और प्रवृत्ति होती है। 'ग' माने गमनागमन की सत्ता अर्थात् जिसकी सत्ता से पशु-पक्षी, मनुष्य आदि में गमनागमन की शक्ति है। 'वा' माने जिसकी सत्ता से पशु-पक्षी और मनुष्य की वाणी स्फुटित होती है अर्थात् वैखरी, मध्यमा, पश्यंती और परा वाणी का जो आधार है, उद्गम-स्थान है। 'न' माने शरीर आदि कुछ भी साथ में नहीं हो, फिर भी जो साथ में रहता है अर्थात् सब छूटने के बाद भी जो तुम्हारा साथ नहीं छोड़ता, सब मिटने के बाद भी जो नहीं मिटता तथा **'नेति-नेति'** (यह सार व सत्य नहीं - यह नहीं) कहकर इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि सभीका निषेध करने पर भी जो बचता है उस एक आत्मा-परमात्मा को 'भगवान' कहते हैं।

प्रश्न : संसारी व्यक्ति की वाणी और भगवान व भगवान को पाये हुए महापुरुषों की वाणी में क्या अंतर है ?

पूज्य बापूजी : संसारी की वाणी संसार के गुण-दोष दिखायेगी और केवल उसके अपनेवालों के हित में होगी। जैसे - किसी मजहबवाले की वाणी होगी तो उसमें अपने मजहब की सराहना होगी और दूसरे की निंदा होगी। किसी पार्टीवाले की वाणी होगी तो उसमें भी अपनी पार्टी का गुणगान होगा और दूसरी पार्टी की तुच्छता का वर्णन होगा । लेकिन भगवान और भगवत्प्राप्त महापुरुषों की वाणी प्राणिमात्र के लिए हितकारक होती है । वह सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी - सभी प्रकार के लोगों के लिए उन्नतिकारक होती है तथा निर्गुणी, जो गुणातीत हैं, उनको भी आनंद देनेवाली होती है । 'श्रीमद्भगवद्गीता', 'श्रीमद्भागवत', उपनिषदें तथा संत तुलसीदासजी आदि संतों द्वारा विरचित 'श्रीरामचरितमानस' जैसे सद्ग्रंथ भगवद्वाणी ही हैं। ये सभी प्रकार के लोगों का मंगल करने का सामर्थ्य अपने में सँजोये हुए हैं।

प्रश्न : संतश्री ! वास्तविक उन्नति क्या है ?

पूज्य बापूजी : रुपया, पैसा, पद-प्रतिष्ठा ये सब बाह्य उन्नति के द्योतक हैं, क्षणिक हैं लेकिन चित्त की शांति, समता, प्रसन्नता एवं चैतन्यस्वरूप आत्मा से चित्त की तदाकारता ये वास्तविक उन्नति के द्योतक हैं।

मनमाने ढंग से भजन करते-करते भले सदियाँ बीत जायें फिर भी वहीं पड़े रहोगे । इसीलिए कहते हैं : 'निगुरे का नहीं कोई ठिकाना ।'

मनमुख नहीं गुरुमुख बनो

यह उस विश्वनियंता की बड़ी कृपा है कि असली सुख के बिना आपके मन को कहीं टिकने नहीं देता । धन में भी आप नहीं टिक पाओगे, कामविकार में भी ज्यादा देर नहीं टिक पाओगे, झगड़े में भी नहीं टिक पाओगे । अनित्य में कहीं एक जगह वह आपको टिकने नहीं देगा क्योंकि आप नित्य हो तथा शरीर और संसार अनित्य हैं ।

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

परमात्मा सारे गुणों की खान है। जैसे सारे वृक्षों की जिगरी जान (मूल आधार) है पृथ्वी, ऐसे ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, देवता, यक्ष, गंधर्व, किन्नर आदि सबकी जिगरी जान है तुम्हारा आत्मा-परमात्मा। बस, आप उसको पाने में लग जाइये, परंतु आपका साधन-भजन मनमाना न हो, गुरु और शास्त्र के अनुसार हो।

आप देखें कि आप अपने मन की करते हो कि गुरु और शास्त्र के अनुसार चलते हो।

कामनाथ महादेव मंदिर (रायपुर) में जीमणाभाई नाम का एक भक्त आता था। वह 'जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा, माता जाकी पार्वती पिता महादेवा' बड़े भाव से गाता था। हम उसके पास जाते, उसके आगे माथा टेकते और पूछते : ''भगवान को पाने के लिए कैसे रहना चाहिए ?'' वह बोलता : ''फलाहार पर रहना चाहिए। मैं तो आलू ही खाता हूँ... यह करता हूँ, वह करता हूँ...''

वह अब बूढ़ा हो गया है और अभी तक वही कर रहा है। हमको तो तड़प थी, सो गुरु के कहे अनुसार लग गये और काम बन गया। वही व्यक्ति बाद में हमारे सत्संग में आकर हमारे आगे गिड़गिड़ाने लगा कि ''साँई ! कृपा करो।''

...तो मनमाने ढंग से भजन करते-करते भले सदियाँ बीत जायें फिर भी वहीं पड़े रहोगे। इसीलिए कहते हैं : 'निगुरे का नहीं कोई ठिकाना' और यदि गुरु से दीक्षा ले भी ली हो, फिर भी मन की ही करते हो तो समझो आपके लिए दुःख बन रहा है, मुसीबतें बन रही हैं... अगर शास्त्र और गुरु के अनुसार ही करते हो तो समझ लो आप मन की मान्यताओं से पार होने की ओर, परमात्मा की ओर जा रहे हैं... देर-सवेर भगवान आपके गले लगेंगे।

यदि आप ईश्वर की ओर जा रहे हैं तो आप शाश्वत सुख की तरफ जा रहे हैं और अपने मन की कर रहे हैं तो आप नरक की तरफ जा रहे हैं, एकदम सीधा गणित है। यह नियम किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं, बल्कि सभी धर्मों के सभी लोगों के लिए है।

सभी मजहबों में, धर्मों में नेक इंसान होते हैं, परंतु कभी नेक वृत्तिवालों की वृत्ति बद हो जाती है और बदवालों की नेक हो जाती है। उतार-चढ़ाव होता रहता है। यह उस विश्वनियंता की बड़ी कृपा है कि असली सुख के बिना आपके मन को कहीं टिकने नहीं देता। धन में भी आप नहीं टिक पाओगे, कामविकार में भी ज्यादा देर नहीं टिक पाओगे, झगड़े में भी नहीं टिक पाओगे। अनित्य में कहीं एक जगह वह आपको टिकने नहीं देगा क्योंकि आप नित्य हो तथा शरीर और संसार अनित्य हैं। यदि आप नित्य को पाने में लगे तो असाध्य कार्य भी आपके लिए साध्य हो जायेंगे।

"भक्तो ! कैसे नहीं जाना है, बापूजी ने मुझे आज्ञा दी है कि 'भक्तों को चाइना पीक दिखाके आओ' तो मैं आपको उसे देखे बिना कैसे जाने दूँ ?"

आज्ञा सम नहीं साहिब सेवा

"उन्होंने तो चाइना पीक देखा लेकिन मुझे जो मिला वह मैं ही जानता हूँ।"

एक बार नैनीताल में मेरे गुरुदेव (स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज) के पास कुछ लोग आये। वे 'चाइना पीक' (हिमालय पर्वत का एक प्रसिद्ध शिखर) देखना चाहते थे।

गुरुदेव ने मुझसे कहा : "ये लोग चाइना पीक देखना चाहते हैं। सुबह तुम जरा इनके साथ जाकर दिखाके आना।"

मैंने कभी चाइना पीक देखा नहीं था, परंतु गुरुजी ने कहा : "दिखाके आओ।" तो बात पूरी हो गयी।

सुबह अँधेरे-अँधेरे में मैं उन लोगों को ले गया। हम जरा दो-तीन किलोमीटर पहाड़ियों पर चले और देखा कि वहाँ मौसम खराब है। जो लोग पहले देखने गये थे वे भी लौटकर आ रहे थे। जिनको मैं दिखाने ले गया था वे बोले : "मौसम खराब है, अब आगे नहीं जाना है।"

मैंने कहा : "भक्तो ! कैसे नहीं जाना है, बापूजी ने मुझे आज्ञा दी है कि 'भक्तों को चाइना पीक दिखाके आओ' तो मैं आपको उसे देखे बिना कैसे जाने दूँ ?"

वे बोले : "हमको नहीं देखना है। मौसम खराब है, ओले पड़ने की संभावना है।"

मैंने कहा : "सब ठीक हो जायेगा।"

लेकिन थोड़ा चलने के बाद वे फिर से हतोत्साहित हो गये और वापस जाने की बात करने लगे। 'यदि कुहरा पड़ जाय या ओले पड़ जायें तो...' - ऐसा कहकर आनाकानी करने लगे। ऐसा अनेकों बार हुआ। मैं उनको समझाते-बुझाते आखिर गन्तव्य स्थान पर ले गया। हम वहाँ पहुँचे तो मौसम साफ हो गया और उन्होंने चाइना पीक देखा। वे बड़ी खुशी से लौटे और आकर गुरुजी को प्रणाम किया।

गुरुजी बोले : "चाइना पीक देख लिया ?"

वे बोले : "साँईं ! हम देखनेवाले नहीं थे, मौसम खराब हो गया था परंतु आसाराम हमें उत्साहित करते-करते ले गये और वहाँ पहुँचे तो मौसम साफ हो गया।"

उन्होंने सारी बातें विस्तार से कह सुनायीं। गुरुजी बोले : "जो गुरु की आज्ञा दृढ़ता से मानता है, प्रकृति उसके अनुकूल हो जाती है।"

मुझे कितना बड़ा आशीर्वाद मिल गया ! उन्होंने तो चाइना पीक देखा लेकिन मुझे जो मिला वह मैं ही जानता हूँ।

आज्ञा सम नहीं साहिब सेवा।

मैंने गुरुजी की बात काटी नहीं, टाली नहीं, बहाना नहीं बनाया, हालाँकि वे तो मना ही कर रहे थे। बड़ी कठिन चढ़ाईवाला व घुमावदार रास्ता है चाइना पीक का और कब बारिश आ जाय, कब आदमी को ठंडी हवाओं का, आँधी-तूफानों का मुकाबला करना पड़े, कोई पता नहीं। किंतु कई बार मौत का मुकाबला करते आये हैं तो यह क्या होता है ? कई बार तो मरके भी आये, फिर इस बार गुरु की आज्ञा का पालन करते-करते मर भी जायेंगे तो अमर हो जायेंगे, घाटा क्या पड़ता है ?

मारने का अधिकार

राजा बड़ा कि योगी ?

एक घनघोर जंगल में पेड़ के नीचे योगी गोरखनाथजी बैठे थे । उस समय उनकी वृत्ति अंतर्जगत में विचरण कर रही थी और वे अपने-आपसे बातचीत कर रहे थे। तभी भारत-सम्राट नवयुवक राजा विक्रमादित्य एक काले हिरण के पीछे घोड़ा दौड़ाते हुए उधर आ पहुँचे । योगी गोरखनाथजी के पीछे खड़े होकर वे उनकी आत्ममस्ती की बातें सुनने लगे।

गोरखनाथजी बोले : ''दुआ माँग ! दुआ कर ! दुआ से जमीन तक फट जाती है और आसमान तक उड़ जाता है। जिस काम को कोई नहीं कर सकता, उसको दुआ कर सकती है। प्रार्थना कर प्रार्थना...''

विक्रमादित्य (मन में) : 'कोई महात्मा मालूम पड़ता है।'

गोरखनाथजी : ''अगर तू उसको देख लेगा तो उसके परदे में परदापन ही क्या रह जायेगा ? विचित्र परदा तो इसीलिए बनाया गया है कि उसको कोई देख न ले।''

विक्रमादित्य : 'कोई तत्त्वज्ञानी जान पड़ता है।'

गोरखनाथजी : ''सब जगत परमात्मा में है । परमात्मा मुझमें है तो महात्मा बड़ा हुआ न परमात्मा से।''

विक्रमादित्य : 'अब तो बहुत ही दूर की बात की ! जीवात्मा और महात्मा दोनों ही परमात्मा के भीतर रहते हैं, जैसे तारे और चाँद आसमान के भीतर रहते हैं।'

गोरखनाथजी : ''(अहं को सजाने हेतु) शक्ति की उपासना करनेवाले 'रावण' बन जाते हैं और (अहं को विलीन करने हेतु) शिव की उपासना करनेवाले 'राम' बन जाते हैं।''

विक्रमादित्य : 'इस हिसाब से मैं एक 'रावण' हूँ क्योंकि राजा होता है शक्ति का उपासक।'

गोरखनाथजी : ''इस विशाल धरती पर सब स्त्रियाँ-ही-स्त्रियाँ हैं। उनकी इच्छा है कि धरती पर जो रहे, सो एक औरत बनकर।''

विक्रमादित्य : 'यह बात समझ में नहीं आयी । यह आदमी कुछ सनकी भी मालूम पड़ता है।'

गोरखनाथजी : ''इस विशाल धरती पर सब पागल-ही-पागल रहते हैं। अगर कोई होश में आने लगता है तो उसे पागल लोग पागल कहने लगते हैं क्योंकि वे खुद पागल हैं।''

विक्रमादित्य : 'सभी पागल हैं ? इस बार फिर इसने छलाँग लगायी । मालूम होता है कि विचार करते-करते यह आदमी पागल हो गया है।'

उसीको है जो जिला सकता हो...

गोरखनाथजी : ''जमीन कहती है कि मैं बड़ी और आसमान कहता है कि मैं बड़ा। औरत कहती है कि मैं बड़ी और मर्द कहता है कि मैं बड़ा। वास्तव में न जमीन बड़ी है न आसमान बड़ा है, बड़ी है 'भूल' जो कि दोनों को नासमझ बनाये हुए है।''

विक्रमादित्य ने पूछा : ''क्यों जी ! तुमने इधर कोई काला हिरण देखा था ?''

गोरखनाथजी : ''मैं यहाँ नहीं रहूँगा । जहाँ सब अंधे-ही-अंधे हैं वहाँ मैं नहीं रहूँगा। जहाँ सब पागल-ही-पागल हैं वहाँ मैं कैसे रह सकूँगा ? जिस गाँव के सब लोग नशेबाज हैं उस गाँव में मेरा गुजारा कैसे होगा ? नहीं-नहीं, औरतों के इस शहर में मैं नहीं रह सकता।''

विक्रमादित्य : ''क्यों जी ! तुम कौन हो ? मेरी बात नहीं सुनते ?''

गोरखनाथजी : ''आपकी अप्रकाशित 'विधान' नामक नाटक-पुस्तक में दो भाग हैं - एक 'दुःखान्त नाटक' और दूसरा 'सुखान्त नाटक'। दुःखान्त नाटक पहले खेला गया और सुखान्त नाटक बाद में खेला जायेगा। परंतु इस दुःखान्त नाटक का अंतिम परदा कब उठेगा ? इसकी समाप्ति किस संवत् में होगी ? ऐसा न हो कि आप सुखान्त नाटक का समय भूल जायें। आपमें चाहे कोई अवगुण न हो, किंतु भूल का अवगुण तो है ही।''

विक्रमादित्य : ''क्यों जी ! यहाँ से कोई गाँव नजदीक है ?''

गोरखनाथजी : ''यह धरती का देश बहुत बड़ा है, यह विशाल धरती का देश, पानी के देश के बीचोबीच सो रहा है और पानी का देश, आग के देश में हिलोरें ले रहा है तो भी इस धरती पर रहनेवाले समस्त कीटाणु बेफिक्री के इंतजाम सोच रहे हैं, बेहिचक घूम रहे हैं सब निशाचर !''

विक्रमादित्य (होंठों में ही बोलते हैं) : 'पूरा पागल मालूम होता है। मैं पूछता हूँ आगरे की बात और यह देता है दिल्ली की खबर।'

संध्या हो रही है किंतु अब तक राजा विक्रमादित्य को उस हिरण का पता नहीं चल सका।

थोड़ी देर बाद अचानक गोरखनाथजी का वह पालतू काला हिरण, जिसके पीछे राजा विक्रमादित्य परेशान हो रहे थे, वहाँ आ पहुँचा। राजा ने एक तीर चला दिया और हिरण मरकर वहीं योगिवर गोरखनाथजी की गोद में गिर पड़ा। उनकी चित्तवृत्ति अंतर्जगत से हटकर अब बाह्य जगत में आ गयी। हिरण को मरा हुआ देख योगी गोरखनाथजी ने राजा विक्रमादित्य से पूछा : ''तुम कौन हो ?''

विक्रमादित्य : ''भारत के उदय-अस्त का मैं राजा हूँ।''

योगी गोरखनाथजी : ''भारत का उदय जब होगा तब होगा, तुम्हारा अस्त आज हो जायेगा।''

''क्यों ?''

''इस निरपराध और पालतू हिरण को क्यों मारा ?''

''मैं राजा हूँ, जिसको चाहूँ मारूँ।''

''मैं नहीं मानता कि तुम राजा हो। तुम तो शूर नहीं, क्रूर हो।''

''तुम्हारे न मानने से क्या होता है ?''

''हमारे न मानने से तुम राजा रह कैसे सकते हो ?''

''अच्छा !''

''और नहीं तो क्या ?''

''क्या करोगे तुम मेरा ?''

''जो तुमने हिरण का किया, ठीक वही।''

''तुम्हारे पास हथियार तो कोई है ही नहीं, फिर मुझको मारोगे कैसे ?''

''हथियार से मारा करते हैं हिजड़े लोग। हमारी दुआ ही हमारी तलवार है। दुआ से जमीन तक फट जाती है। तुम्हारा फट जाना कौन-सी बड़ी बात है ?''

''क्या मैंने कोई अपराध किया है ?''

> *"हिरण को छोड़कर भी राजधानी चले जाओ तो मैं जानूँ ? बिना इसे जीवित किये तुम एक डग आगे नहीं रख सकते । यदि रखते हो तो राजधानी में नहीं, कुरबानी में जरूर जाओगे ।"*

*''प्रजा को बनाने और बिगाड़ने का खेल राजा लोग खेला करते हैं;
हम योगी वे लोग हैं जो राजाओं को बनाने-बिगाड़ने का खेल खेला करते हैं।''*

''बड़ा भारी।''

''क्या ?''

''मारने का अधिकार उसीको है जो जिला सकता हो। जो जिलाना नहीं जानता उसको मारने का हक नहीं है, हुक्म नहीं है, कानून नहीं है।''

''मरकर कोई जीवित नहीं हो सकता। मरकर जीवित होना यह प्रकृति के नियम के विरुद्ध है।''

''प्रकृति के नियमों को तुम क्या जानोगे ? प्रकृति का नाम ही सुन लिया है या उसे कभी देखा भी ? विष खाने से आदमी मर जाता है, परंतु शंकरजी विष खाकर भी अमर हैं। बिना जड़ का कोई पौधा नहीं होता, किंतु अमरबेल बिना मूल के ही फैलती है। सम्भव और असम्भव दोनों नियमों की नियमावली की माला जो प्रकृति पहने हुए है, उसका नाम ही सुन रखा है या कुछ जानते भी हो ?''

''मुझे फुरसत नहीं जो ज्यादा बकवाद करूँ। हिरण को लेकर राजधानी लौटना है।''

''हिरण को लेकर ? हिरण को छोड़कर भी राजधानी चले जाओ तो मैं जानूँ ? बिना इसे जीवित किये तुम एक डग आगे नहीं रख सकते। यदि रखते हो तो राजधानी में नहीं, कुरबानी में जरूर जाओगे। हजार बात की एक बात यह कि इसे जीवित करो या मरने को तैयार हो जाओ।''

''तुम कौन हो ?''

''प्रजा को बनाने और बिगाड़ने का खेल राजा लोग खेला करते हैं; हम योगी वे लोग हैं जो राजाओं को बनाने-बिगाड़ने का खेल खेला करते हैं।''

''क्या तुम इस हिरण को जीवित कर सकते हो ?''

''अगर जीवित कर दें तो ?''

''तो भारत का सम्राट तुम्हारा गुलाम हो जायेगा।''

''कंचन, कामिनी और कीर्ति की अत्यधिक वांछनीय त्रिमूर्ति 'राजपाट' को छोड़कर नम्रता, ब्रह्मचर्य और त्याग की अत्यधिक दुर्लभ त्रिमूर्ति 'भक्तिमार्ग' में आ जाओगे ?''

''जरूर आ जाऊँगा।''

अमरविद्या या प्राणकला के आचार्य गोरखनाथजी ने उसी क्षण मरे हुए हिरण को सचमुच जिला दिया।

विक्रमादित्य : ''योगी राजा से अनंत गुना श्रेष्ठ है। राजा केवल मार सकता है, पर योगी मार भी सकता है और जिंदा भी कर सकता है। आप मुझे अपना शिष्य बना लें, मैं राजकाज से निवृत्त होऊँगा।''

गोरखनाथजी : ''नहीं विक्रमादित्य ! अभी तुम्हें देश-विदेश की देखभाल करनी है। तुम अपने परोपकारमय जीवन को ही और ऊँचा बनाओ। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।''

ब्रह्मचर्य-महिमा

ब्रह्मचर्य का पालन करके जो जीते नर-नार हैं।
उनको ही जीने का आनंद मिलता सर्वसार है ॥

संयम की शक्ति ही केवल जीवन का आधार है।
महापुरुषों के चरित्र पढ़िये सबमें संयम सार है ॥

ब्रह्मचर्य ही रिपु वासना को झट देता मार है।
ब्रह्मा, विष्णु और महेश का यह परम शृंगार है ॥

ब्रह्मचर्य से तेजस्वी जीवन होता साकार है।
ब्रह्मचर्य ही सुख-शांति का परम अखूट भंडार है ॥

ब्रह्मचर्य से ही तुरीयातीत आनंद का आसार है।
ब्रह्मचर्य के बल पे ही शुकदेव तरे संसार हैं ॥

ब्रह्मचर्य के बल पे ही भीष्म इच्छामृत्यु पाये हैं।
लीलाशाहजी ने दिये बापूजी जैसे तारणहार हैं ॥

ब्रह्मचर्य के बिना अनेकों, रोगों के शिकार हैं।
ज्ञान-बिरति की पुष्टि हेतु संयम ही स्वीकार है ॥

नेटवर्क चैनल भारत पे इक वज्र-प्रहार है।
जागो भाइयो ! ये तो अपने भारत का संहार है ॥

भोग-वासना में लंपट बन जो करते आचार हैं।
वे तो केवल लाश हैं जिंदा औ' जमीं पर भार हैं ॥

वीर्यहीन जीवन तो भाई ! सदैव दुःखागार है।
सुख तो क्या पाता है वो तो खुद का गुनहगार है ॥

आलस, प्रमाद और विषमता असंयम की मझधार है।
धृग धृग है जीवन तो उसका खुला नरक का द्वार है ॥

- प्रदीप काशीकर, मुंबई।